अध्याय–10

क्षेत्रीय सहयोग

अध्याय का ढ़ांचा

10.1 प्रस्तावना

10.1.1 अध्याय के उद्देश्य

10.2 क्षेत्रीय सहयोग से अभिप्राय

10.3 क्षेत्रीय सहयोग के प्रकार

10.4 क्षेत्रीय सहयोग के प्रेरक तत्व

10.4.1 भौगोलिक निकटता

10.4.2 सांस्कृतिक सम्बन्ध

10.4.3 स्थानीय भेदभाव समाप्त करने की इच्छा

10.4.4 राष्ट्रीय हित की भावना

10.4.5 राष्ट्रीय सुरक्षा की भावना

10.4.6 आर्थिक हितों की पूर्ति

10.5 क्षेत्रीय सहयोग के प्रमुख उदाहरण

10.6 क्षेत्रीय सहयोग में संयुक्त राष्ट्र की भूमिका

10.7 क्षेत्रीय सहयोग की आवश्यकता

10.8 सारांश

10.9 प्रश्नावली

10.10 पाठन सामग्री

10.1 प्रस्तावना

क्षेत्रीय सहयोग का इतिहास भी उतना ही पुराना है जितना अंतर्राष्ट्रीय सहयोग का क्षेत्रीय संगठनों के माध्यम से क्षेत्रीय सहयोग की प्रवृत्ति लम्बे समय से चली आ रही है। और आज यह अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की एक वास्तविकता है जिस पर अंतर्राष्ट्रीय सहयोग आधारित है। द्वितयी विश्व युद्ध के बाद महाशक्तियों के परस्परिक अविश्वास और संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) में पैदा होने वाली राजनीति अड़चनों के परिणामस्वरूप क्षेत्रीय सहयोग के संगठनों की उत्पत्ति और विकास को अधिक बल मिला। इनके निर्माण का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का समाधान करना तथा क्षेत्रीय सुरक्षा व्यवस्था को मजबूत बनाना है। समान विचारधारा वाले देश समान हितों को प्राप्त करने के लिए जब क्षेत्रीय सहयोग की भावना के आधार पर कार्य करने की इच्छा रखने लगते हैं तो क्षेत्रीय सहयोग

संगठन का जन्म होता है। इसी क्षेत्रीय संगठन के माध्यम से सन्धिकर्ता राष्ट्र क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा देकर अपने वांछित लक्ष्यों को पूरा करते हैं।

साधारणतया क्षेत्रीय सहयोग से भौगोलिक निकटता या अन्य प्रकार का साम्य रखने वाले देशों के आपसी सम्बन्धों का आभास होता है। लेकिन आज क्षेत्रीय सहयोग की प्रवृति भौगोलिक सीमाओं को लांघ चुकी है। इसमें वे देश भी शामिल हैं जो अन्य सदस्य देशों से काफी दूर हैं। आज क्षेत्रीय सहयोग का प्रमुख आधार सामान्य हित की अवधारणा है। OAS, अफ्रीकी एकता संगठन, यूरोपीय आर्थिक समुदाय भौगोलिक निकटता पर आधारित क्षेत्रीय सहयोग के प्रमुख उदाहरण हैं जबकि उत्तर अटलांटिक सन्धि संगठन, इस्लामिक सम्मेलन संगठन, तेल निर्यातक देशों का संगठन सामान्य हित की विचारधारा पर आधारित क्षेत्रीय सहयोग के संगठन हैं। आज अमेरिका तथा ब्रिटेन कई संगठनों के सदस्य हैं जिनके संगठन का आधार भौगोलिक न होकर हित साम्य है। इसलिए क्षेत्रवाद की अवधारणा एक जटिल अवधारणा बन गई है। इससे क्षेत्रवाद की सभी पुरानी मान्यताएं बदल गई हैं। आज भौगोलिक सीमाओं को कोई महत्व नहीं रह गया है।

10.1.1 अध्याय के उद्देश्य

इस अध्याय के माध्यम से विद्यार्थियों को राष्ट्रों के बीच क्षेत्रीय सहयोग के महत्त्व को समझाना है। इस अध्याय में यह बताया गया है कि इस प्रकार का सहयोग ने केवल भौगोलिक निकटता वालो राष्ट्रों के बीच ही सम्भव है, बल्कि भौगोलिक दूरियों वाले राष्ट्रों के बीच भी वर्तमान आर्थिक स्थितियों के फलस्वरूप सम्भव है। इसीलिए यहाँ विभिन्न प्रकार के क्षेत्रीय स्वरूप एवं संगठनों की विस्तार पूर्वक जानकारी दी गई है। इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र की इस स्थिति में भूमिका तथा समसामयिक समय में इसके महत्त्व की जानकारी देना भी इस अध्याय का उद्देश्य है।

10.2 क्षेत्रीय सहयोग से अभिप्राय

भौगोलिक दृष्टि से समीपता रखने वाले हितों में साम्य रखने वाले कुछ देशों द्वारा संगठित होने की प्रवृति को क्षेत्रीय सहयोग कहा जाता है। क्षेत्रीय सहयोग के लिए कुछ देश क्षेत्रीय आधार पर संगठित होकर अपने हितों को पूरा करते हैं। पामर व पर्किन्स ने क्षेत्रीय सहयोग या संगठन को परिभाषित करते हुए कहा है कि "क्षेत्रीय सहयोग ऐसी व्यवस्था का नाम है जिसमें दो या दो से अधिक सम्प्रभुता सम्पन्न राज्य समान हित के आधार पर संगठित होकर कार्य करते हैं।" इसके लिए भौगोलिक निकटता का होना अनिवार्य नहीं है। आज बदलते संदर्भ में क्षेत्रीय सहयोग का अर्थ है – उन सभी राज्यों के समूहों के बीच सहयोग स्थापित करना जो अपने आपको भौगोलिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व राजनीतिक हितों के रूप में बंधा हुआ महसूस करते हैं।

10.3 क्षेत्रीय सहयोग के प्रकार

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद निर्मित क्षेत्रीय सहयोग संगठनों के आधार पर क्षेत्रीय सहयोग को दो भागों में बांटा जा सकता है।

1. क्षेत्रीय सैनिक सहयोग

2. गैर सैनिक क्षेत्रीय सहयोग।

1945 के बाद निर्मित सैनिक सन्धि संगठन जैसे – नाटो, सेण्टो, सीटो, वारसा पैक्ट आदि संगठन सैनिक सहयोग के उदाहरण हैं। इन संगठनों की स्थापना का उद्देश्य सदस्य राष्ट्रों को सैनिक आधार पर संगठित करना था।

किन्तु सैनिकवादी संगठनों की प्रवृति ज्यादा दिन तक नहीं चल सकी और अनेक देशों ने सामाजिक व आर्थिक विकास के लिए अपने आपको संगठित करना शुरू कर दिया और इससे गैर सैनिक क्षेत्रीय सहयोग संगठनों का जन्म हुआ। अरब लीग, सार्क, आसियान इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

10.4 क्षेत्रीय सहयोग के प्रेरक तत्व –

क्षेत्रीय सहयोग की प्रवृति को जन्म देने वाले प्रमुख तत्व निम्नलिखित हो सकते हैं –

10.4.1 भौगोलिक निकटता

भौगोलिक रूप से अलग देशों का समूह अन्य भौगोलिक अध्याययों से अलग विचारधारा रखता है। प्राकृतिक साधनों का वितरण उन्हें संगठित होने के लिए प्रेरित करता है। वे एक दूसरे को सहयोग देने की भावना रखने लगते हैं। आज सामरिक दृष्टि से भी भौगोलिक एकता की आवश्यकता है। OAS का निर्माण इसका प्रमुख उदाहरण है।

10.4.2 सांस्कृतिक सम्बन्ध

एक महाद्वीप में बसने वाली समान जाति, बोली और धर्म भी क्षेत्रीय सहयोग को प्रेरित करती है। अरब लीग सांस्कृतिक सहयोग का प्रमुख उदाहरण है। इसमें सभी इस्लाम धर्म को मानने वाले देश शामिल हैं।

10.4.3 स्थानीय भेदभाव समाप्त करने की इच्छा

जब कुछ राज्य अपने क्षेत्रों से स्थानीय भेदभाव मिटाने की इच्छा रखते हैं तो उससे क्षेत्रीय सहयोग की भावना का जन्म होता है। पश्चिमी गोलार्द्ध में OAS का निर्माण तथा अफ्रीकी एकता संगठन का निर्माण इसी आधार पर हुआ है।

10.4.4 राष्ट्रीय हित की भावना

जब क्षेत्रीय व्यवस्था से राष्ट्रीय हितों की पूर्ति की प्रबल संभावना हो तो कुछ राष्ट्र आपस में मिलकर क्षेत्रीय सहयोग करते हैं। इससे उनको अपनी सुरक्षा व विकास के अधिकार अवसर प्राप्त होते हैं।

10.4.5 राष्ट्रीय सुरक्षा की भावना

जब किसी देश को बाहरी आक्रमण का खतरा हो या राष्ट्रीय सीमाओं की सुरक्षा खतरे में लगती हो तो अन्य देशों के साथ मिलकर अपने को सुरक्षित बनाने पर विचार करने लगता है। पाकिस्तान ने चीन, रूस व भारत से खतरा मानते हुए सैनिक संगठन सेण्टो की सदस्यता ग्रहण की है। इसलिए सुरक्षा के उद्देश्य से भी क्षेत्रीय सहयोग की प्रवृति का जन्म होता है।

10.4.6 आर्थिक हितों की पूर्ति

प्रत्येक देश के अन्य देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध अवश्य होते हैं। अपने आर्थिक हितों को पूरा करने के लिए वह परस्पर सहयोग की भावना रखने लगता है और क्षेत्रीय सहयोग की प्रवृति अस्तित्व में आ जाती है। यूरोपीय आर्थिक समुदाय, यूरोपीय सांझा बाजार इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

10.5 क्षेत्रीय सहयोग के प्रमुख उदाहरण

क्षेत्रीय सहयोग की प्रवृति काफी लम्बे समय से चली आ रही है। प्रथम विश्व युद्ध से पहले भी 1889 में 'अन्तर अमेरिकी व्यवस्था' क्षेत्रीय सहयोग के रूप में विद्यमान थी। 1925 की संघ राष्ट्रीय सन्धि भी क्षेत्रीय सहयोग का प्रमुख उदाहरण है। लेकिन सैद्धान्तिक रूप में क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा देने में UNO की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है। आज विश्व में अनेकों क्षेत्रीय सहयोग संगठन कार्यरत हैं जो क्षेत्रीय सहयोग के पुख्या उदाहरण हैं। इनमें से कुछ प्रमुख संगठन निम्नलिखित हैं –

1. उत्तरी अटलांटिक संधि संगठन (NATO, 1949)।
2. दक्षिण–पूर्वी एशिया सन्धि संगठन (SEATO, 1954)।
3. आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड तथा संयुक्त राज्य समझौता (ANZUS, 1951)
4. अरब लीग (1954)।
5. दक्षिण–पूर्वी एशियाई राष्ट्र संघ (ASEAN, 1967)।
6. अफ्रीका एकता संगठन (OAU, 1963)।
7. अमेरिकी राज्यों का संघ (OAS, 1948)।
8. दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (SAARC, 1985)।
9. हिन्द महासागर क्षेत्रीय सहयोग संगठन (IORARC, 1997)।
10. एशिया–प्रशान्त महासागर आर्थिक सहयोग (APEC, 1989)।
11. यूरोपियन आर्थिक सहयोग संगठन (OEEC, 1948)।
12. आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (OECD, 1961)।
13. यूरोपीय कोयला तथा इस्पात समुदाय (ECSC, 1952)।
14. यूरोपीय सांझा बाजार (ECM, 1958)।

10.6 क्षेत्रीय सहयोग में संयुक्त राष्ट्र की भूमिका

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अंतर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा को मजबूत के लिए UNO के चार्टर की धारा 52 में स्पष्ट लिखा गया है कि अंतर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा को बनाए रखने के लिए क्षेत्रीय संगठनों द्वारा की गई कार्यवाहियां संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों व सिद्धान्तों के अनुकूल होनी चाहिए। आगे कहा गया कि क्षेत्रीय संगठनों के सदस्य स्थानीय झगड़ों को आपसी बातचीत द्वारा शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाने का प्रयास करें। UNO के चार्टर में सुरक्षा परिषद को यह अधिकार दिया गया है कि वह क्षेत्रीय संगठनों के द्वारा ही स्थानीय झगड़ों का निपटारा करने ाक प्रयास करे। धारा 54 में क्षेत्रीय संगठनों द्वारा किसी भी आक्रामक कार्यवाही की सूचना सुरक्षा परिषद को देना आवश्यक है लेकिन धारा 51 में सामूहिक आत्मरक्षा के अधिकार के लिए ऐसा अनिवार्य नहीं है। इतना होने के बावजूद भी UNO को क्षेत्रीय संगठनों की तरफ से विश्व शान्ति के लिए कोई अधिक सहायता प्राप्त नहीं हो सकी है। सैन्य क्षेत्रीय संगठनों ने UNO की गतिविधियों को कमजोर किया है। यदि दोनों (क्षेत्रीय व अंतर्राष्ट्रीय) संगठन साथ–साथ कार्य करें तो विश्व शान्ति की सम्भावना अधिक प्रबल होगी। गैर सैनिक संगठन कुछ हद तक UNO के उद्देश्यों व सिद्धान्तों के अनुसार ही कार्य कर रहे हैं। इनसे क्षेत्रीय सहयोग के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय सहयोग का आधार मजबूत हो रहा है। अतः आज आवश्यकता इस बात की है हमें UNO को मजबूरी प्रदान करने के लिए क्षेत्रीय संगठनों का पूरा सहयोग उस ओर मोड़ना चाहिए। ताकि क्षेत्रीय सहयोग के साथ अंतर्राष्ट्रीय सहयोग में भी वृद्धि हो सके।

10.7 क्षेत्रीय सहयोग की आवश्यकता

आज का युग परमाणु हथियारों का युग है। आज प्रत्येक देश अपने को सामरिक दृष्टि से सुरक्षित देखना चाहता

है। इसके लिए वह अन्य राष्ट्रों का सहयोग चाहता है। सम्पूर्ण विश्व को एक अध्याय में बांधना कठिन कार्य है लेकिन कुछ समान विचारधारा वाले देशों को तो आपस में जोड़कर विश्व शान्ति का विचार पुख्ता किया जा सकता है। आज भाषा, धर्म, जाति, संस्कृति के आधार पर कुछ राष्ट्रों का संघ बनाना आसान है जो स्थानीय समस्याओं का हल भली–भांति कर सकता है। अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की स्थापना से विश्व शान्ति की जो उम्मीदें बंधी थी, वे निरन्तर समाप्त होती जा रही हैं। इसलिए आज विश्व व्यवस्था को क्षेत्रीय व्यवस्था में विभाजित करने की आवश्यकता है। NATO, SEATO व सैण्टों ने प्रादेशिक आधार पर सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था को मजबूत बनाया है। इसी तरह की अन्य व्यवस्थाएं भी इस दिशा में कार्यरत है। जब समान विचारधारा वाले अनेक राष्ट्र संगठित हो जाते हैं तो वे पारस्परिक सहयोग के आधार पर अनेकों सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक समस्याएं स्वयं हल कर लेते हैं। आज सम्पूर्ण विश्व में सांझा बाजार की व्यवस्था करना दुस्कर कार्य है। इसलिए परस्पर समान हितों वाले अनेक राष्ट्र क्षेत्रीय आधार पर सांझा बाजारों का विकास करने में लगे हुए हैं। आज यूरोपीय राष्ट्र अलग सांझा बाजार बनाकर सम्पूर्ण विश्व अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने में सक्षम हैं तो अन्य राष्ट्र समूह भी ऐसा ही कर सकते है। इससे उनकी आर्थिक समस्याओं के साथ–साथ अन्य ढेर सारी समस्याएं भी स्वयः ही हल हो जाएंगी। इससे विभिन्न राष्ट्रों के सांस्कृतिक और राजनीतिक सम्बन्ध भी प्रगाढ़ होंगे। इससे आर्थिक सहयोग का जो नया क्षेत्र विकसित होगा वह अवश्य ही वर्तमान व्यवस्था से अच्छा होगा।

10.8 सारांश

मूलरूप में इस अध्याय में क्षेत्रीय सहयोग के सभी पहलुओं के बारे में विस्तारपूर्वक बताया गया है। यह भी स्पष्ट किया गया है कि इस प्रकार का सहयोग निकट भौगोलिक राष्ट्रों के साथ भौगोलिक रूप से दूरी वाले राष्ट्रों के बीच भी सम्भव है। इस प्रकार का सहयोग राजनीतिक या सामरिक के अतिरिक्त सांस्कृतिक, सामाजिक व आर्थिक क्षेत्रों में भी सम्भव है। वर्तमान युग में सभी महाद्वीपों में इस प्रकार के बहुत सारे संगठन कार्यरत है। संयुक्त राष्ट्र भी वैश्विक सन्दर्भों के साथ–साथ क्षेत्रीय सहयोग को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। समसामयिक युग में तकनीक एवं संचार के साधनों के विकास ने इस प्रक्रिया को और तेज कर दिया है। अतः आज के युग में क्षेत्रीय सहयोग अनिवार्य ही नहीं, अपितु अपरिहार्थ स्थिति बन गई है।

10.9 प्रश्नावली

1. क्षेत्रीय सहयोग से आपका क्या अभिप्राय है? क्षेत्रीय सहयोग के निर्धारिक तत्त्वों का विस्तार पूर्वक वर्णन करें।
2. समसामयिक समय में क्षेत्रीय सहयोग की बढ़ती प्रवृतियों के कारणों एवं परिणामों का वर्णन करें।
3. क्षेत्रीय सहयोग के विकास हेतु संयुक्त राष्ट्र की भूमिका का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।
4. शीतयुद्ध काल एवं शीतयुद्धोत्तर युग में क्षेत्रीय सहयोग के स्वरूप का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए।

10.10 पाठन सामग्री

1. महेन्द्र कुमार, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सैद्धान्तिक पक्ष (आगरा, 1984)
2. हेंस जे. मारगेन्थाऊ, पॉलिटिक्स अमंग नेशंज (कलकत्ता, 1972)
3. पीटर कलवोसिरेसी, वर्ल्ड पॉलिटिक्स सिंस, 1945 (लन्दन, 1987)

4. नार्मन डी. पामर एवं होवर्ड डी पकिंज, इन्टरनेशनल रिलेसन्ज, (कलकत्ता, 1970)
5. जॉन बेलिस एवं स्टीव स्मीथ, सम्पा०, ग्लोबलाईजेसन ऑफ वर्ल्ड पॉलिटिक्स (न्ययार्क, 2002)
6. अनीकचटर्जी, इन्टरनेशनल रिलेसंज टूडे (दिल्ली, 2010)
7. रूमकी बासु, सम्पा०, इन्टरनेशनल पॉलिटिक्स : कन्सेपटस, थ्यौरिज एण्ड इश्यूज, (सेज, 2012)
8. क्रिस्टीयन रूसेमित एवं डंकन एनीडल, सम्पा०, दॉ ऑक्सफोर्ड हेंडबुक ऑफ इन्टरनेशनल रिलेसंज, (ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रैस, 2010)

अध्याय–11

दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (दक्षेस)

अध्याय का ढ़ांचा

11.1 प्रस्तावना

11.1.1 अध्याय के उद्देश्य

11.2 दक्षेस की स्थापना

11.3 दक्षेस के उद्देश्य

11.4 दक्षेस के सिद्धान्त

11.5 दक्षेस की संरचना

11.5.1 शिखर सम्मेलन

11.5.2 मन्त्रिपरिषद

11.5.3 स्थायी समिति

11.5.4 तकनीकी समितियां

11.5.5 सचिवालय

11.6 दक्षेस के शिखर सम्मेलन

11.7 मूल्यांकन

11.8 सारांश

11.9 प्रश्नावली

11.10 पाठन सामग्री

11.1 प्रस्तावना

'दक्षिण एशिया' शब्द का प्रयोग भारत के उत्तर में हिंदुकुश व हिमालय से लेकर दक्षिण में अरब सागर, हिन्द महासागर तथा बंगाल की खाड़ी के मध्य स्थित सुविस्तीर्ण भारतीय प्रायद्वीप से बने भारतीय उपमहाद्वीपीय देशों के समूह के लिए किया जाता है। भौगोलिक दृष्टि से भारतीय महाद्वीप एशिया महाद्वीप से एक पृथक ईकाई लगता है। लेकिन इस क्षेत्र के लोगों में सदैव राजनीतिक एकता का अभाव रहा है। काफी लम्बे समय तक 'दक्षिण–एशिया' पर ब्रिटिश शासन का वर्चस्व रहा है द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यह क्षेत्र राजनीतिक रूप से तो स्वतन्त्र हो गया लेकिन इसमें आपसी मतभेदों का अम्बार लगा रहा। साम्राज्यवादी चुंगल से निकलने के बाद इस क्षेत्र में आर्थिक विकास की गति काफी धीमी रही। भारत और पाकिस्तान के आपसी मतभेदों ने इस क्षेत्र को कहल का अखाड़ा बना दिया। भारत की तरफ से आपसी मतभेदों को शान्तिपूर्ण ढंग से हल करने के अनेकों प्रयास किए गए लेकिन पाकिस्तान का उत्तर नकारात्मक ही रहा। बंगलादेश के जन्म के साथ ही भारत व पाकिस्तान सम्बन्धों में कुछ बदलाव आया

और पारस्परिक सौहार्दपूर्ण वार्ताएं शुरू हो गई। ऐसे वातावरण में बंग्लादेश के राष्ट्रपति जिआ–उर–रहमान की तरफ से एक क्षेत्रीय सहयोग संगठन बनाने का विचार पेश किया गया।

11.1.1 अध्याय का उद्देश्य

इस अध्याय का मूल उद्देश्य दक्षिण एशिया में दक्षेस के विशेष सन्दर्भ में ऊभरते क्षेत्रीय सहयोग का आंकलन करना है। इस अध्याय में दक्षेस की स्थापना, उद्देश्य, सिद्धान्त एवं संरचना के साथ–साथ इसके द्वारा आयोजित वार्षिक शिखर सम्मेलनों की विस्तृत जानकारी प्रदान करना है। इन सब का उद्देश्य दक्षिण एशिया में सहयोग की स्थिति को समझकर उसका मूल्यांकन करना है। इसी मूल्यांकन के आधार पर दक्षिण एशिया में सहयोग की भावी सम्भावनाओं को समझने में मद्द मिलेगी।

11.2 दक्षेस की स्थापना

1980 के दशक क्षेत्रीय सहयोग के लिए सबसे महत्वपूर्ण समय साबित हुआ। 1981 में बंगलादेश के तत्कालीन राष्ट्रपति जिआ–उर–रहमान ने दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग सम्वर्धन हेतु एक नवीन योजना प्रस्तुत की। मन्त्रीस्तरीय वार्ताओं द्वारा इसे अमली जामा पहनाने के प्रयास उस समय सार्थक हो गए जब अगस्त, 1983 में सात देशों के विदेश मन्त्रियों ने एक सामूहिक क्षेत्रीय सहयोग का घोषणा पत्र नई दिल्ली में स्वीकार किया। इस घोषणापत्र में दक्षिण–एशियाई क्षेत्र में आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास को बढ़ावा देने पर बल दिया गया। इसके लिए आपसी सहयोग को मजबूत बनाने की आवश्यकता पर बल दिया गया तथा सहयोग के नए क्षेत्र तलाशने की आवश्यकता महसूस की गई। इसके बाद 1984 की नई दिल्ली की बैठक में दक्षिण एशियाई देशों के बीच सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विकास के साथ–साथ मैत्रीपूर्ण राजनीतिक संबंधों के विकास का आह्मन किया गया। इसके पश्चात् फरवरी 1985 की माले में स्थाई कमेटी की बैठक में आपसी सहयोग बढ़ाने के लिए सार्क देशों की मन्त्रिपरिषद के निर्माण पर बल दिया गया। मई 1985 की थिम्पू बैठक में सार्क देशों अपनी समस्याओं को दूर करने के लिए सार्क देशों ने एक क्षेत्रीय सहयोग संगठन को अमली जामा पहनाया। इसमें यह निश्चय किया गया कि दिसम्बर, 1985 में ही इस संगठन का सम्मेलन बुलाया जाएगा। इस तरह थिम्पू (भूटान) बैठक द्वारा SAARC की स्थापना का रास्ता साफ हो गया और ढाका घोषणापत्र के रूप में सार्क (SAARC) का जन्म हुआ। 7 दिसम्बर, 1985 को बंग्लादेश की राजधानी ढाका में सात दक्षिण एशियाई देशों – भारत, मालद्वीप, भूटान, नेपाल, पाकिस्तान, बंगलादेश तथा श्रीलंका ने सार्क के घोषणापत्र पर औपचारिक हस्ताक्षर किए।

11.3 दक्षेस के उद्देश्य

सार्क के चार्टर के अनुच्छेद 1 में सार्क के निम्नलिखित उद्देश्यों को परिभाषित किया गया है –

1. दक्षिण–एशिया के देशों की जनता के कल्याण को प्रोत्साहित करना तथा उनके जीवन स्तर में सुधार लाना।
2. दक्षिण एशियाई देशों की सामूहिक आत्मनिर्भरता का विकास करना।
3. इस क्षेत्र में आर्थिक विकास, सामाजिक प्रगति और सांस्कृतिक विकास की गति तेज करना।
4. सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक क्षेत्रों में पारस्परिक सहयोग में वृद्धि करना।
5. अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर आपसी सहयोग को मजबूत बनाना अन्य क्षेत्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ सहयोग करना।

6. दूसरे विकासशील देशों के साथ सहयोग को बढ़ाना।
7. सदस्य देशों में आपसी विश्वास बढ़ाना तथा समस्याओं को समझने के लिए एक दूसरे का सहयोग करना।

11.4 दक्षेस के सिद्धान्त

सार्क के चार्ट के अनुच्छेद 2 के अंतर्गत सार्क के निम्नलिखित सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है :–

1. सार्क के माध्यम से क्षेत्रीय सहयोग, समानता, क्षेत्रीय अखण्डता, राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा दूसरे के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप न करना।
2. क्षेत्रीय सहयोग को द्विपक्षीय व बहुपक्षीय सहयोग का पूरक बनाना।
3. क्षेत्रीय सहयोग को द्विपक्षीय व बहुपक्षीय सहयोग के उत्तरदायित्वों के अनुकूल बनाना।

11.5 दक्षेस की सरंचना

सार्क के चार्टर के अंतर्गत सार्क के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित अभिकरणों की व्यवस्था की गई है:

11.5.1 शिखर सम्मेलन

इसमें सदस्य देशों के शासनाध्यक्ष आपसी समस्याओं पर विचार करने व सहयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से प्रतिवर्ष किसी निश्चित स्थान पर एकत्रित होते हैं। सार्क का पहला शिखर सम्मेलन दिसम्बर, 1985 में ढाका में हुआ था। अब तक इसके 11 शिखर सम्मेलन आयोजित हो चुके हैं। सार्क का 11वां शिखर सम्मेलन जनवरी, 2002 में काठमांडू में आयोजित हुआ।

11.5.2 मन्त्रिपरिषद

इसमें सदस्य देशों के विदश मन्त्री शामिल होते हैं। इसके बैठक आवश्यकतानुसार कभी भी आयोजित की जा सकती है। इसको प्रमुख कार्य संघ की नीति निर्धारित करना, सामान्य हित के मुद्दों के बारे में निर्णय करना व सहयोग के लिए नए क्षेत्र तलाश करना है।

11.5.3 स्थायी समिति

इसमें सदस्य देशों के सचिव शामिल हैं। इसका कार्य सहयोग के कार्यक्रमों की मॉनिटरिंग करना तथा अध्ययन के आधार पर सहयोग के नए मित्रों की पहचान करना है। यह तकनीकी समिति के कार्यो का निरीक्षण करती है व उसके कार्यो को प्रभावी बनाने के लिए सुझाव भी देती है।

11.5.4 तकनीकी समितियां

इसमें सभी सदस्य देशों के प्रतिनिधि होते हैं। ये अपने–अपने क्षेत्र में कार्यक्रम लागू करने, समन्वय करने व उन्हे मॉनिटरिंग करने के लिए उत्तरदायी हैं। ये सहयोग के नए क्षेत्रों की सम्भावनाओं का भी पता लगाती है। इनके सभी कार्य तकनीकी आधार के हैं।

11.5.5 सचिवालय

महासचिव इसका अध्यक्ष होता है। उसका कार्यकाल 2 वर्ष होता है। यह पद सदस्य देशों को बारी–बारी से प्राप्त होता रहता है। सचिवालय को 7 भागों में बांटा गया है। प्रत्येक विभाग का कार्य निदेशक की देखरेख में चलता है। सचिवालय संगठन के प्रशासनिक कार्यो का निष्पादन करता है। इसकी स्थापना 16 जनवरी, 1987 को दूसरी सार्क सम्मेलन (बंगलौर) द्वारा की गई है। इनके अतिरिक्त सार्क की एक कार्यकारी समिति भी है। जिसकी स्थापना

स्थायी समिति द्वारा की जाती है। सार्क के कार्यो के निष्पादन के लिए एक वित्तीय संस्था का भी प्रावधान किया गया है। जिसमें सभी सदस्य देश निर्धारित अंशदानके आधार पर वित्तीय सहयोग देते हैं। इसमें भारत का हिस्सा 32 प्रतिशत है।

11.6 दक्षेस के शिखर सम्मेलन

1985 से अब तक SAARC के 18 शिखर सम्मेलन हो चुके हैं। उनका विस्तृत वर्णन निम्नलिखित प्रकार से है –

1. **पहला शिखर सम्मेलन** – सार्क का प्रथम शिखर सम्मेलन 7 से 8 दिसम्बर, 1985 को बंगलादेश की राजधानी ढाका में हुआ। इसमें सातों सदस्य देशों ने भाग लिया। यह सम्मेलन जिआ–उर–रहमान के स्वप्न का साकार रूप था। इसके आयोजन से एक क्षेत्रीय सहयोग संगठन का सैद्धान्तिक आधार तैयार हो गया। इस सम्मेलन की अध्यक्षता बंगलादेश के राष्ट्रपति एच.एम. इरशाद ने की। इस सम्मेलन में (SAARC) के उद्देश्यों व सिद्धान्तों पर आपसी सहमति हो गई। इसमें जो घोषण पत्र प्रस्तुत किया गया उसमें सदस्य देशों को प्रतिवर्ष किसी निश्चित स्थान पर एकत्रित होने के लिए कहा गया। इसमें एक मन्त्रिपरिषद बनाने का भी निर्णय हुआ। इसमें तकनीकी समिति व कार्यकारी समिति के निर्माण की बात भी पास हो गई। इस सम्मेलन में विभिन्न समस्याओं तथा सहयोग के विभिन्न पहलुओं पर व्यापक विचार–विमर्श हुआ।

2. **दूसरा शिखर सम्मेलन** – SAARC का द्वितीय शिखर सम्मेलन 16–17 नवम्बर, 1986 को बंगलौर (भारत) में हुआ। यह सम्मेलन दो दिन तक चला और इसमें सभी सदस्य देशों ने विभिन्न समस्याओं व सहयोग के क्षेत्रों पर व्यापक विचार विमर्श करके सांझी योजनाएं व नीतियां बनाने का समर्थन किया। इस सम्मेलन में भारत का नेतृत्व प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी ने किया। उन्होंने बंगलादेश के राष्ट्रपति इरशाद से SAARC का अध्यक्ष पद भी प्राप्त किया। इसमें बंगलादेश के अनुभवी कूटनीतिज्ञ अबुल हसल को सार्क का महासचिव नियुक्त किया गया। इसमें विकासशील गतितिधियों में स्त्रियों के सहयोग पर तथा मादक पदार्थो के प्रयोग को बन्द करने के लिए एक तकनीकी समिति के निर्माण का निर्णय हुआ। इसमें सहयोग के नए क्षेत्रों रेडियों–दूरदर्शन कार्यक्रम, पर्यटन, शिक्षा व आपदा प्रबन्ध पर अध्ययन को शामिल किया गया। इसमें दक्षिण एशिया को आतंकवाद से मुक्त करने पर भी आपसी समझौता करने की आवश्यकता पर जोर दिया गया। यद्यपि इस सम्मेलन में पाकिस्तान ने द्विपक्षीय मुद्दे उठाकर माहौल को खराब करने की कोशिश की लेकिन वह असफल रहा। जब भारत ने दक्षिण एशिया में एक सांक्षा बाजार (Common Market) स्थापित करने की बात कही तो पाकिस्तान ने इसका विरोध किया। पाकिस्तान भारत की बड़ी आर्थिक भागेदारी से चिन्तित था। इस सम्मेलन में विकासशील देशों पर बढ़ते ऋणों के भार पर भी चिन्ता प्रकट की गई। इसमें NIEO की मांग भी दोहराई गई तथा परमाणु निःशस्त्रीकरण पर काफी जोर दिया गया। इस प्रकार SAARC का द्वितीय शिखर सम्मेलन एक ऐतिहासिक यादगार बन गया।

3. **तीसरा शिखर सम्मेलन** – SAARC का तीसरा शिखर सम्मेलन नवम्बर, 1987 में नेपाल की राजधानी काठमाण्डू में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में आतंकवाद निरोधक समझौता किया गया जिसमें प्रत्येक सार्क देश को किसी अन्य देश में आतंकवादी गतिविधियां संचालित न करने की बात कहीं गई। इसमें आंतकवादी गतिविधियों में लिप्त व्यक्ति को अपने–अपने देशों में राजनीतिक शरण न देने पर सहमति हुई। नेपाल नरेश ने सार्क की मूल भावना सहयोग व आपसी सौहार्द को मजबूत बनाने का आह्मन किया। इसमें भारत के सहयोग को भी सराहा गया। भारत ने इस सम्मेलन में केन्द्रीय आर्थिक क्षेत्रों जैसे – व्यापार, उद्योग, शक्ति तथा वातावरण में सहयोग देने का विचार रखा लेकिन उसे पूर्ण समर्थन न मिलने के कारण घोषणा पत्र में शामिल नहीं किया गया। भारत ने अफगानिस्तान को सार्क का सदस्य बनाने पर अपनी सहमति प्रकट की तथा पाकिस्तान ने 'दक्षिण–एशियाई परमाणु विहीन क्षेत्र' की बात कही। इन प्रस्तावों को भी अन्तिम घोषणा

पत्र में स्थान नहीं मिल सका। इस सम्मेलन में दक्षिण एशिया संरक्षित खाद्यान्न भंडार समझौता भी हुआ ताकि इस क्षेत्र में खाद्यान्न की कमी या अकाल की स्थिति में उसका सामना किया जा सके।

4. **चौथा शिखर सम्मेलन** – सार्क का चौथा शिखर सम्मेलन दिसम्बर, 1988 में इस्लामाबाद (पाकिस्तान) में आयोजित हुआ। इसकी अध्यक्षता पाकिस्तान की प्रधानमन्त्री बेनजीर भुट्टो ने की। इस सम्मेलन में सार्क के सिद्धान्तों के प्रति वचनबद्धता को दोहराया गया। 31 दिसम्बर को जारी इस्लामाबाद घोषणापत्र में मादक पदार्थो के उत्पादन, तस्करी व दुरूपयोग पर गहरी चिन्ता व्यक्त की गई और 1989 को 'मादक पदार्थो के दुरूपयोग के विरूद्ध सार्क वर्ष' घोषित करने का निर्णय लिया गया। इस सम्मेलन में सार्क के शासनाध्यक्षों ने इस शताब्दी के अन्त तक खाद्यान्न, वस्त्र, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य, जनसंख्या नियंत्रण व पर्यावरण संरक्षण पर एक सामूहिक कार्य योजना बनाने का निश्चत किया गया जिसे "सार्क–2000, बुनियादी आवश्यकता परियोजना के नाम से जाना जाता है। इस सम्मेलन में दक्षिण एशियाई उत्सवों को समय–समय पर आयोजित करने का निर्णय लिया गया। इसमें ग्रीन हाउस प्रभाव तथा दक्षिण एशिया पर इसके प्रभावों के अध्ययन को सामूहिक रूप से आगे बढ़ाने पर भी निर्णय हुआ। इसमें काठमाण्डू घोषणापत्र के प्रावधानों को भी दोहराया गया।

5. **पांचवां शिखर सम्मेलन** – सार्क का पांचवां शिखर सम्मेलन मालद्वीव की राजधानी माले में (नवम्बर, 1990) हुआ। इसमें भारत का नेतृत्व प्रधानमन्त्री चन्द्रशेखर ने किया। उन्होंने सार्क क्षेत्र को शान्ति क्षेत्र घोषित करने पर बल दिया। सम्मेलन के घोषणापत्र में आर्थिक क्षेत्र में आपसी सहयोग बढ़ाने तथा जन संचार माध्यम, जैविक तकनीकी और पर्यावरण को आर्थिक मुद्दों में शामिल करने पर सहमति की बात स्वीकार की गई। इसमें मादक पदार्थो के गैर कानूनी व्यापार मादक पदार्थो की तस्करी तथा अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विरूद्ध गहरी चिन्ता प्रकट की गई। इसमें यह भी निर्णय लिया गया कि सार्क का अगला सम्मेलन श्रीलंका में होगा। इस सम्मेलन में 1991 को सार्क आवास वर्ष, 1992 को सार्क पर्यावरण वर्ष तथा 1993 को सार्क अपंग व्यक्ति वर्ष के रूप में मनाने का निर्णय लिया गया।

6. **छठा शिखर सम्मेलन** – सार्क का छठा शिखर सम्मेलन 21 दिसम्बर, 1991 को कोलम्बो (श्रीलंका) में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में भारत का नेतृत्व प्रधानमन्त्री पी.वी. नरसिम्हा राव ने किया। इस सम्मेलन में क्षेत्रीय समस्याओं के समाधान के लिए क्षेत्रीय सहयोग की आवश्यकता पर बल दिया गया। इसमें आतंकवाद, की निंदा करने, निःशस्त्रीकरण का स्वागत करने, गरीबी निवारण हेतु दक्षिण–एशियाई समिति का गठन करने तथा सार्क देशों में प्राथमिक शिक्षा की सुविधाओं का विस्तार करने पर जोर दिया गया। भारत ने सांझी आर्थिक सुरक्षा व्यवस्था स्थापित करने का आह्मन किया। इसमें संयुक्त उद्योग स्थापित करने तथा क्षेत्रीय परियोजनाओं को पूरा करने हेतु एक सामूहिक कोष गठित करने का निर्णय लिया गया।

7. **सातवां शिखर सम्मेलन** – सार्क का सातवां शिखर सम्मेलन बंगला देश की राजधानी ढाका में 11–13 अप्रैल, 1993 को आयोजित हुआ। इसमें सभी सदस्य देशों ने भाग लिया। इसमें भारत की अध्यक्षता प्रधानमन्त्री पी.वी. नरसिम्हा राव ने की। इसमें अतःक्षेत्रीय व्यापार के उदारीकरण के लिए एक समझौता (SAPTA) किया गया। इसमें व्यापार वस्तु, निर्माण और सेवाएं, पर्यावरण, जनसंख्या, आवास, बच्चों, अपंग, व्यक्तियों, स्त्री विकास, प्रौद्योगिकी, आतंकवाद, मादक पदार्थो का व्यापार आदि के सम्बन्ध में सार्क घोषणा पत्र में संगठित कार्य योजना को भी स्वीकार किया गया। इसमें सार्क को मजबूत बनाने के निश्चय को भी दोहराया गया तथा अगला सार्क सम्मेलन भारत में आयोजित करने की घोषणा की गई।

8. **आठवां शिखर सम्मेलन** – सार्क का आठवां शिखर सम्मेलन 3–4 मई, 1995 को भारत की राजधानी नई दिल्ली में सम्पन्न हुआ। इसमें सभी देशों के शासनाध्यक्षों ने भाग लिया। इसके घोषणापत्र में सभी देशों

द्वारा गरीबी और आतंकवाद के विरूद्ध संघर्ष करने का आह्मन किया गया। इसमें (SAPTA) समझौता लागू करने का भी निश्चय किया गया। इस सम्मेलन में आतंकवाद के बढ़ते प्रभाव तथा परमाणु शस्त्रों की बढ़ती होड़ पर नियंत्रण करने की मांग की गई। इसमें वर्ष 1995 को गरीबी समाप्ति का वर्ष के रूप में मनाने का निर्णय लिया गया। इसमें सार्क को अधिक उपयोगी संस्था के रूप में विकसित करने पर भी विचार–विमर्श हुआ।

9. **नौवां शिखर सम्मेलन** – सार्क देशों का नौवां शिखर सम्मेलन मई, 1997 में मालद्वीव की राजधानी माले में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में भारत की अध्यक्षता प्रधानमन्त्री इन्द्र कुमार गुजराल ने की। इसमें सभी सदस्य देशों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में भारत ने दक्षिण एशियार्द आर्थिक समुदाय के गठन का आह्म भी किया। इसमें दक्षिण एशिया मुक्त व्यापार क्षेत्र (SAFTA) की 2001 में स्थापना के लिए प्रयासों को तेज करने की घोषणा की गई। इसमें गरीबी उन्मूलन व स्त्रियों की खरीद–फरोख्त पर भी व्यापक विचार विमर्श हुआ। माले घोषणा पत्र में अगला सम्मेलन श्रीलंका में आयोजित करने का निर्णय लिया गया। इसमें संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद का विस्तार करने का भी आहवान किया गया। इसमें इस क्षेत्र से वीजा अवरोधक समाप्त करने व शरणार्थी कानून के दुरूपयोग पर रोक लगाने का निर्णय लिया गया। इसमें आतंकवाद को रोकने के लिए ठोस कदम उठाने की आवश्यकता पर बल दिया गया। इसमें सार्क देशों के बीच आवागमन, पर्यटन तथा सांस्कृतिक आदान–प्रदान को बढ़ावा देने का भी संकल्प लिया गया।

10. **दसवां शिखर सम्मेलन** – सार्क का दसवां शिखर सम्मेलन 29 जुलाई 1998 को श्रीलंका की राजधानी कोलम्बों में आयोजित हुआ। इसमें भारत का नेतृत्व प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी ने किया। इसमें भारत ने सम्पूर्ण निःशस्त्रीकरण की बात कही। इसके घोषणापत्र में सार्क देशों की एकीकृत कार्य योजना पर बल दिया गया। इसमें आर्थिक विकास के लिए सांझे आर्थिक कार्यक्रम बनाने की आवश्यकता पर जोर दिया गया। इसमें आतंकवाद पर नियंत्रण तस्करी पर रोक, स्वास्थ्य, जनसंख्या, महिला व बाल कल्याण योजनाओं पर बल तथा पर्यावरण सुरक्षा को महत्व दिया गया। इसमें भारत की तरफ से 2000 वस्तुओं के तटकर को कम करने की घोषणा की गई। इसमें सदस्य देशों को विज्ञान व तकनीकी सहयोग में वृद्धि करने की आवश्यकता पर बल दिया गया तथा SAFTA की 2001 तक स्थापना करने का निर्णय लिया गया।

11. **ग्यारहवां शिखर सम्मेलन** – सार्क का 11वां शिखर सम्मेलन काफी लम्बे समय बाद जनवरी, 2002 को नेपाल की राजधानी काठमाण्डू में हुआ। यह सम्मेलन उस वातावरण में हुआ जब भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध के आसार थे। पाकिस्तान, ने इस सम्मेलन में अपने द्विपक्षीय मुद्दों को उठाने का प्रयास किया लेकिन उसे असफलता का मुंह देखना पड़ा। 6 जनवरी, 2002 को जारी सार्क घोषणापत्र में अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद की समाप्ति के प्रति वचनबद्धता को व्यक्त किया गया। सार्क नेताओं ने अंतर्राष्ट्रीय समुदाय से यह प्रार्थना की कि आतंकवाद के विरूद्ध कठोर कानून बनाए जाए। इसमें सांझे हित के विषयों – आर्थिक सहयोग, गरीबी उन्मूलन, शिक्षा, स्त्री व बाल कल्याण आदि पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया। इसमें दक्षिण एशिया की अर्थव्यवस्था के एकीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने तथा विश्वीकरण (Globalisation) के प्रभावों को कम करने के लिए केन्द्रीय क्षेत्रों–व्यापार, वित्त व निवेश में सहयोग बढ़ाने का आह्वान किया गया। इसमें यह भी निर्णय किया गया कि अगला सार्क शिखर सम्मेलन पाकिस्तान में (2003) होगा।

12. **12वे से 18वे सम्मेलन–** दक्षेस देशों के 2002 से 2020 तक कुछ अठारह शिखर सम्मेलन ही हो पाये, जो इस प्रकार से है बारहवॉ (4–6 जनवरी 2004, इस्लामवादी), तेहवाँ (12–13 नवम्बर 2005, ढ़ाका), चौदवां (3–4 अप्रैल 2007, नई दिल्ली), पन्द्रहवाँ (1–3 अगस्त 2008, कोलम्बों), सोलहवाँ (28–29 अप्रैल 2010, पिम्पू), सतरहवाँ (10–11 नवम्बर 2011, माले), तथा अठारहवाँ (26–27 नवम्बर 2014, काठमांडू)। इसके बाद

उनीसवाँ सम्मेलन 15–16 नवम्बर 2016 में इस्लामाबाद में प्रतावित था, परन्तु पाकिस्तान की डरी में आतंकवादी घटना के कारण भारत ने इसमें हिस्सा लेने से इन्कार कर दिया। बाद में बाकी देशों ने भी इन्कार कर दिया। तब ये आज तक दक्षेस का वार्षिक शिखर सम्मेलन आयोजित नहीं हो पाया है। समसामयिक घटनाक्रम व भारत–पाकिस्तान द्विपक्षीय रिस्तों को देखते हुए इसके निकट भविष्य में होने की सम्भावनाएँ भी बहुत कम है।

11.7 मूल्यांकन

जिन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए SAARC का जन्म हुआ था, उनको प्राप्त करने में यह संगठन अधिक सफल नहीं रहा है। आज समस्त विश्व क्षेत्रीय सहयोग की उपयोगिता को स्वीकारने लगा है तो SAARC को भी इस दिशा में अथक प्रयास करने की जरूरत है। आज भारत व पाकिस्तान के आपसी मतभेद दक्षिण एशिया में अशान्ति के लिए पूर्ण रूप से उत्तरदायी हैं। अन्य SAARC देश भी सैनिक ताकतों के साथ मिलकर क्षेत्रीय सहयोग की भावना के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। यदि SAARC के सदस्य देश आपसी मतभेद भुलाकर एक सहयोगपूर्ण नीति पर चलें तो दक्षिण एशिया विश्व के सामने एक नई चुनौती पेश कर सकता है। इस क्षेत्र में आर्थिक विकास के काफी अवसर हैं जो आपसी तकनीकी व आर्थिक सहयोग के आधार पर गतिमान हो सकते हैं। भारत इस क्षेत्र की सबसे बड़ी आर्थिक शक्ति के रूप में उभर रहा है। SAARC के अन्य देशों को भारत के साथ सकारात्मक सहयोग करना चाहिए जिससे दक्षिण एशिया में आत्मनिर्भरता के युग की शुरूआत हो सके।

आज SAARC के सदस्य देश आपसी सहयोग द्वारा तथा उप–क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग द्वारा राजनीतिक विवादों से ऊपर उठकर आर्थिक विकास का मार्ग तैयार कर सकते हैं। इसके लिए सार्क देशों को SAFTA की तरफ मुड़ जाना चाहिए। दक्षिण एशिया में मुक्त व्यापार क्षेत्र के रूप में विकसित होने की प्रबल सम्भावनाएं हैं। इससे दक्षिण एशिया में आर्थिक विकास का नया मार्ग प्रशस्त होगा। इससे विकसित देशों पर उनकी निर्भरता कम होगी और उनकी अर्थव्यवस्थाओं पर विश्वीकरण के दुष्प्रभावों को भी कम करने में मद्द मिलेगी। पाकिस्तान को यह बात अवश्य समझनी होगी की सार्क में भारत की बढ़ती सहभागिता से उसका तथा पाकिस्तान दोनों का फायदा होगा। इससे विकास को गति मिलेगी और राजनीतिक सद्भाव को प्रोत्साहन मिलेगा। आज आवश्यकता इस बात की है कि भारत की बिग ब्रदर की भावना का पाकिस्तान द्वारा समुचित आदर किया जाए तो सार्क एक उपयोगी संस्था का रूप ले सकता है। आज पाकिस्तान द्वारा भारत पर जो प्रायोजित आतंकवाद थोपा जा रहा है, उससे सार्क पर भी बुरा असर पड़ सकता है। चीन के साथ पाकिस्तान के नए सम्बन्ध दक्षिण एशिया में बढ़ती आर्थिक व राजनीतिक सहयोग की प्रवृत्ति को खटाई में डाल सकते हैं।

यदि सार्क की भूमिका को सकारात्मक बनाना है तो आज भारत और पाकिस्तान को आपसी मतभेदों को दूर करने की सबसे प्रबल आवश्यकता है। सार्क को महाशक्तियों के हस्तक्षेप से मुक्त रखकर आपसी सहयोग के नए क्षेत्र तलाशने के साथ–साथ आज सार्क को आर्थिक मंच के साथ–साथ राजनीतिक मंच बनाने की भी जरूरत है। आज सार्क देशों में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, तकनीकी सहयोग को बढ़ाने की प्रबल सम्भावनाएं हैं। सभी SAARC देशों को इस दिशा में ठोस कदम अवश्य उठाने चाहिए। अपने सांझे अनुभवों व तकनीकी सहयोग के द्वारा SAARC देश सामूहिक आत्मनिर्भरता का लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन निकट भविष्य में ऐसी सम्भावना कम ही दिखाई देती है। अतः निष्कर्ष तौर पर यही कहा जा सकता है कि SAARC क्षेत्रीय सहयोग की कल्पना को जन्म देने में तो अवश्य सफल रहा है लेकिन सकारात्मक क्षेत्रवाद की उत्पत्ति से अभी काफी दूर है अर्थात SAARC प्रभावशाली क्षेत्रीय सहयोग संगठन नहीं है।

11.8 सारांश

उपरोक्त अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग की प्रक्रिया बड़ी देर से प्रारम्भ हुई। दक्षेस की स्थापना के बाद भी यह सहयोग बहुत सकारात्मक रूप से आगे नहीं बढ़ा। इस स्थिति के मूलतः दो बड़े सदस्यों – भारत व पाकिस्तान के बीच रिस्तों में टकराव रहा है। इसके अतिरिक्त दक्षेस के देश अपनी नकारात्मक विरासतों को भी भूलाने में असमर्थ रहे है। इन देशों के मध्य अत्यधिक भौगोलिक, जनसंख्या, आर्थिक विकास, सैन्य क्षमताएं आदि का विभेद भी कुछ हद तक उतरदायी रहा है। इन सभी के परिणाम स्वरूप इनके शिखर सम्मेलन समय पर नहीं हो सके तथा 2014 के बाद से तो आयोजित ही नहीं हो पाए। अतः दक्षिण एशिया में दक्षेस, कुछ सामान्य उपलब्धियों के बावजुद, बहुत सफल प्रधान नहीं रहा।

11.9 प्रश्नावली

1. दक्षिण एशिया में सहयोग विकसित करने हेतु दक्षेस (सार्क) की भूमिका का आंकलन कीजिए।
2. दक्षेस (सार्क) की उत्पत्ति एवं विकास का विस्तृत वर्णन कीजिए।
3. दक्षेस (सार्क) की सफलताओं एवं असफलताओं का वर्णन कीजिए।
4. दक्षिण एशिया को आर्थिक सहयोग में दक्षेस के रास्ते में आने वाले रूकावट वाले कारकों का वर्णन कीजिए।

11.10 पाठन सामग्री,

1. महेन्द्र कुमार, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सैद्धान्तिक पक्ष (आगरा, 1984)
2. हेंस जे. मारगेन्थाऊ, पॉलिटिक्स अमंग नेशंज (कलकत्ता, 1972)
3. पीटर कलवोसिरेसी, वर्ल्ड पॉलिटिक्स सिंस, 1945 (लन्दन, 1987)
4. नार्मन डी. पामर एवं होवर्ड डी पकिंज, इन्टरनेशनल रिलेसन्ज, (कलकत्ता, 1970)
5. जॉन बेलिस एवं स्टीव स्मीथ, सम्पा०, ग्लोबलाईजेसन ऑफ वर्ल्ड पॉलिटिक्स (न्ययार्क, 2002)
6. अनीकचटर्जी, इन्टरनेशनल रिलेसंज टूडे (दिल्ली, 2010)
7. रूमकी बासु, सम्पा०, इन्टरनेशनल पॉलिटिक्स : कन्सेपटस, थ्यौरिज एण्ड इश्यूज, (सेज, 2012)
8. क्रिस्टीयन रूसेमित एवं डंकन एनीडल, सम्पा०, दॉ ऑक्सफोर्ड हेंडबुक ऑफ इन्टरनेशनल रिलेसंज, (ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रैस, 2010)

अध्याय–12

दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्रों का संगठन (ऑशियान)

अध्याय का ढ़ांचा

12.1 प्रस्तावना

12.1.1 अध्याय के उद्देश्य

12.2 ऑशियान की स्थापना

12.3 ऑशियान के उद्देश्य

12.4 ऑशियान की संरचना

12.4.1

12.4.2

12.4.3

12.5 ऑशियान के कार्य

12.6 ऑशियान के शिखर सम्मेलन

12.7 मूल्यांकन

12.8 सारांश

12.9 प्रश्नाली

12.10 पाठन सामग्री

12.1 प्रस्तावना

'दक्षिण–पूर्वी एशिया' शब्द का प्रयोग उन देशों के लिए किया जाता हैं जो हिन्द महासागर के पूर्व तथा पश्चिमी प्रशान्त महासागर के क्षेत्र में आते हैं। 1945 से पूर्व यह शब्द अंतर्राष्ट्रीय संबंधों से गायब था। 1945 के बाद ही भारत के पूर्व तथा चीन के दक्षिण–पश्चिम में स्थित देशों म्यांमार, बरूनी, इंडोनेशिया, कम्पूचिया, लाओस, मलेशिया, फिलिपाइन, सिंगापुर, थाईलैंड तथा वियतनाम आदि देशों का क्षेत्र 'दक्षिण पूर्वी एशिया' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। यह क्षेत्र सामरिक तथा भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के कारण साम्राज्यवादी देशों का उपनिवेश रहा और इसकी आर्थिक समृद्धि ने साम्राज्यवादी ताकतों को इस ओर आकर्षित किया। साम्यवाद के बढ़ते प्रभाव ने 1945 के बाद पश्चिमी शक्तियों को नई चुनौती पेश की। इस क्षेत्र में पश्चिम द्वारा साम्यवाद का प्रसार रोकने के लिए 'इफाके' एवं 'ग्रेट ईस्ट एशियन को प्रोसपेरेटी स्फेयर' जैसे संगठनों को महत्व दिया गया। लेकिन इनसे इस क्षेत्र कोई विशेष लाभ नहीं हुआ और 1954 में SEATO का गठन किया गया। सैनिक संगठन होने के कारण SEATO भी इस क्षेत्र के आर्थिक विकास की समस्याओं पर अपना पूरा ध्यान केन्द्रित नहीं कर सका। इस संगठन में पश्चिमी शक्तियों को भागेदारी से चिन्तित इस क्षेत्र के देशों ने आर्थिक विकास का भार स्वयं वहन करने की घोषणा के

परिणामस्वरूप 1959 में ही ASEAN के निर्माण का रास्ता साफ हो गया।

12.1.1 अध्याय के उद्देश्य

इस अध्याय का मूल उद्देश्य क्षेत्रीय सहयोग के एक महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त क्षेत्रीय संगठन ऑशियान के बारे में सम्पूर्ण जानकारी प्रदान करना है। इस पाठ में ऑशियान की उत्पत्ति, उद्देश्य, संरचना एवं कार्यों का विस्तृत व्यौरा प्रस्तुत है। इस अध्याय में ऑशियान द्वारा आयोजित शिखर सम्मेलनो के बारे में भी अवगत कराया गया है। इन सभी विवरणों के आधार पर ऑशियान संगठन का मूल्यांकन किया गया है। अतः यह अध्याय दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों द्वारा क्षेत्रीय सहयोग की ऑशियान के माध्यम से की गई उन्नति का सम्पूर्ण विवरण प्रस्तुत करती है।

12.2 ऑशियान की स्थापना

वियतनाम में अमेरिकी हस्तक्षेप, कंबोडिया में राजनीतिक संकट, ब्रिटेन व फ्रांस की एशिया नीति में परिवर्तन तथा हिन्द–चीन क्षेत्र के देशों में आई राजनीतिक जागृति ने इस क्षेत्र में एक ऐसी शक्तिशाली आर्थिक संस्था स्थापित करने का रास्ता साफ किया जो इस क्षेत्र के पूर्ण आर्थिक विकास में योगदान दे सके। इनके परिणामस्वरूप 8 अगस्त, 1967 को ASEAN की स्थापना हेतु बैंकाक घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किए गए। प्रारम्भ में इंडोनेशिया, मलेशिया, फिलीपीन्स, सिंगापुर तथा थाईलैण्ड ने इस घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किए। बाद में अन्य देशों ने भी इसकी सदस्यता ग्रहण कर ली और सदस्यता का आंकड़ा 10 से ऊपर पहुंच गया। भारत, रूस व चीन को भी ASEAN में पूर्ण संवाद सहभाग बना लिया गया है। आज इंडोनेशिया, मलेशिया, फिलीपीन्स, सिंगापुर, थाईलैण्ड, ब्रनेई, वियतनाम, लाओसण म्यांमार तथा कंबोडिया के ASEAN के दस प्रमुख सदस्य राष्ट्र हैं।

12.3 ऑशियान के उद्देश्य

ASEAN एक विशुद्ध असैनिक संगठन है। फिर भी बैंकाक घोषणापत्र में सभी सदस्य देशों को क्षेत्रीय शान्ति हेतु सहयोग करने की अपील की गई। इसके प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. क्षेत्रीय शान्ति व स्थिरता को प्रोत्साहित करना।
2. क्षेत्र में सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करना।
3. सांझे हितों में परस्पर सहायता व सहयोग की भावना को बढ़ाना।
4. शिक्षा, तकनीकी ज्ञान, वैज्ञानिक क्षेत्र में पारस्परिक सहयोग को बढ़ावा देना।
5. क्षेत्र में अनुसंधान, प्रशिक्षण तथा अध्ययन को प्रोत्साहित करना।
6. समान उद्देश्यों वाले क्षेत्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ अधिक सहयोग करना।
7. कृषि व्यापार तथा उद्योग के विकास में सहयोग देना।

इस तरह ASEAN के निर्माण का उद्देश्य सदस्य राष्ट्रों में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, तकनीकी, वैज्ञानिक, राजनीतिक, व्यापारिक तथा प्रशासनिक सहयोग को बढ़ावा देना है।

12.4 ऑशियान की संरचना

ASEAN के प्रमुख अभिकरण निम्नलिखित हैं–

12.4.1 विदेश मन्त्रियों का सम्मेलन

इसे परामर्श मंत्रालय के नाम से भी जाना जाता है। इसका सम्मेलन वर्ष में एक बार अवश्य आयोजित करने का

निर्णय इसी अभिकरण द्वारा लिया जाता है। इसमें सदस्य राज्यों के सभी विदेश मन्त्री शामिल होते हैं।

12.4.2 स्थायी समिति

विदेश मन्त्रियों के सम्मेलन के दौरान यह समिति विभिन्न विषयों पर विचार–विमर्श करवाती है तथा क्षेत्रीय सहयोग में वृद्धि करने के आवश्यक सुझाव प्रस्तुत करती है। इसमें मेजबान देश का विदेश मन्त्री तथा अन्य सदस्य देशों के राजदूत शामिल होते हैं।

12.4.3 सचिवालय

प्रशासनिक सहयोग के कार्यो को पूरा करने के लिए 1976 में ASEAN के संगठनात्मक स्वरूप में परिवर्तन करके सचिवालय नामक अभिकरण भी जोड़ दिया गया। इसका कार्यालय इंडोनेशिया की राजधानी जकार्ता में है। इसका अध्यक्ष महासचिव होता है। इसकी नियुक्ति 2 वर्ष के लिए होती है। यह प्रशासनिक गतिविधियों पर अपना पूरा नियंत्रण रखता है। इसके अतिरिक्त सचिवालय में ब्यूरो निदेशक तथा अन्य कर्मचारी भी होते हैं। इन तीन अभिकरणों के अतिरिक्त ASEAN की नौ स्थाई तथा आठ अस्थाई समितियां भी हैं जो संगठन के विभिन्न कार्यो का निष्पादन करती है।

12.5 ऑशियान के कार्य

इसका कार्यक्षेत्र बहुत व्यापक है। यह समस्त राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, तकनीकी, व्यापारिक तथा प्रशासनिक क्षेत्रों में कार्यरत है। आज दक्षिण–पूर्वी एशिया में अनेक सामाजिक व आर्थिक समस्याएं हैं जिनको हल करने के लिए यह संगठन निरन्तर प्रयासरल है। ASEAN की स्थायी समिति ने जनसंख्या विस्फोट, निर्धनता, आर्थिक शोषण, असुरक्षा से सम्बन्धि अनेक नीतियां व कार्यक्रम बनाए हैं। इसके प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

1. यह दक्षिण–पूर्वी एशिया में मुक्त व्यापार क्षेत्र विकसित करने की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। व्यापार की उदार नीतियों को प्रोत्साहित करके इस दिशा में निरन्तर प्रयास जारी हैं। इसका उद्देश्य सांझा बाजार स्थापित करना है।
2. पर्यटन के क्षेत्र में सहयोग को बढ़ावा देने के लिए यह अपने एक सामूहिक संगठन 'आसियण्टा' के माध्यम से कार्य कर रहा है।
3. यह सदस्य देशों में सुरक्षा व शान्ति के लिए आणविक हथियारों पर रोक लगाने पर जोर दे रहा है।
4. यह संगठन दक्षिण–पूर्वी एशिया के आर्थिक विकास पर जोर दे रहा है।
5. यह सांस्कृतिक गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए रेडियो तथा दूरदर्शन के माध्यम से सहयोग को बढ़ावा दे रहा है।
6. यह जनसंख्या नियंत्रण, शिक्षा का विकास, समाज कल्याण, दवाईयों पर नियंत्रण, खेल आदि के कार्यक्रमों को प्रोत्साहित कर रहा है।
7. कृषि को बढ़ावा देने के लिए यह तकनीकी शिक्षा का लाभ किसानों तक पहुंचाने के प्रयास कर रहा है।

   इस प्रकार ASEAN सदस्य राष्ट्रों में पारस्परिक आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, तकनीकी व प्रशासनिक सहयोग को बढ़ावा देने के लिए प्रयास कर रहा है। यह इस क्षेत्र में एक सांझा बाजार स्थापित करने की दिशा में प्रयासरत् है।

12.6 ऑशियान के शिखर सम्मेलन

ASEAN के कार्यो व भूमिका का व्यापार मूल्यांकन उसके शिखर सम्मेलनों में लिए गए निर्णयों के आधार पर ही किया जा सकता है। इसके प्रमुख शिखर सम्मेलन निम्नलिखित हैं–

1. **प्रथम वाली शिखर सम्मेलन** – इस सम्मेलन में फरवरी, 1976 में पारस्परिक व्यापार को बढ़ावा देने की नीति पर जोर दिया गया। इसमें कम खाद्य एवं ऊर्जा वाले देशों की अधिक ऊर्जा शक्ति वाले देशों द्वारा सहायता करने का आश्वासन भी दिया गया। इस सम्मेलन में दो प्रमुख दस्तावेजों पर हस्ताक्षर हुए। प्रथम दस्तावेज द्वारा समस्त सदस्य देशों की स्वतन्त्रता और सम्प्रभुता के प्रति आदर करने एक दूसरे के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप न करने के प्रति आदर करने व पारस्परिक झगड़ों का हल शान्तिपूर्ण ढंग से पारस्परिक सहयोग की प्रवृति पर आधारित सिद्धान्तों के आधार पर हल करने पर जोर दिया गया। दूसरे दस्तावेज में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक व तकनीकी सहयोग की आवश्यकता पर जोर दिया गया।

2. **दूसरा क्वालालम्पुर शिखर सम्मेलन** – अगस्त 1977 में आयोजित इस सम्मेलन में सदस्य देशों ने दक्षिण–पूर्वी एशिया को शान्ति, स्वतन्त्रता व स्थिरता का क्षेत्र विकसित करने पर जोर दिया। इस सम्मेलन में विकासशील देशों की विकसित देशों पर बढ़ती निर्भरता को चिन्ताजनक माना गया।

3. **तीसरा मनीला शिखर सम्मेलन** – 14 दिसम्बर, 1987 को आयोजित इस सम्मेलन में फिलीपीन्स में एक्विनो सरकार की स्थिरता, कम्बोडिया समस्या तथा आसियान ASEAN राष्ट्रों के दूसरे राष्ट्रों के साथ गठबन्धनों पर व्यापक विचर विमर्श किया गया। इस सम्मेलन में 'दक्षिण पूर्वी एशिया' क्षेत्र को परमाणु मुक्त क्षेत्र विकसित करने, पर जोर दिया गया। इसमें वरीयता व्यापार समझौते की अनुपालना करने व आसियान क्षेत्र को एक आर्थिक शक्ति के रूप में विकसित करने दिया गया।

4. **चौथा सिंगापुर शिखर सम्मेलन** – इस सम्मेलन में (1992) नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था NEIO की मांग दोहराई गई। इसमें एशियान को मुक्त व्यापार क्षेत्र के रूप में विकसित करने व शान्ति क्षेत्र घोषित करने पर भी जोर दिया गया।

5. **पांचवां बैंकाक शिखर सम्मेलन –** दिसम्बर, 1995 में आयोजित इस सम्मेलन में दक्षिण–पूर्वी एशिया को 2003 तक मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाने पर निर्णय किया गया। इसमें बौद्धिक सम्पदा सम्बन्धी एक समझौता भी हुआ। इसके अतिरिक्त आसियान क्षेत्र को नाभिकीय शस्त्र विहीन क्षेत्र बनाने पर भी एक समझौता हुआ।

6. **छठा हनोई शिखर सम्मेलन** – दिसम्बर 1998 में हनोई (वियतनाम) में आयोजित इस शिखर सम्मेलन में 2003 से पहले ही इस क्षेत्र को मुक्त व्यापार क्षेत्र के रूप में विकसित करने पर निर्णय लिया गया। हनोई कार्य योजना के तहत क्षेत्रीय आर्थिक एकीकरण, व्यापार उदारीकरण तथा वित्तीय सहयोग में वृद्धि करने के उपाय भी निर्धारित किए गए।

7. **सातवां सेरी बेगावन शिखर सम्मेलन** – नवम्बर, 2001 में आयोजित बादर सेरी बेगावन (ब्रुनेई) सम्मेलन में भारत को आसियान का पूर्ण संवाद सहभागी बनाने पर सहमति हुई। इसमें रूस व चीन को भी संवाद सहभागी बनाने पर सहमति प्रकट की गई।

8. **8वें से 39वें शिखर सम्मेलन तक –** सन् 2001 के बाद भी 2005 तक बहारवें सम्मेलन तक प्रत्येक वर्ष ऑशियान के किसी देश द्वारा आयोजित किया गया। सन् 2007 के बारहवें सम्मेलन के बाद सन् 2019 तक प्रत्येक वर्ष में दो सम्मेलनों का आयोजन किया गया। सिर्फ सन् 2008 में कोई सम्मेलन नहीं हो सका। ऑशियान देश का 35वाँ व अन्तिम सम्मेलन थाईलैंड की राजधानी बैंकाक में 1–4 नवम्बर 2019 में आयोजित हुआ। इस सम्मेलन में मुल रूप से बाहुल्यवादी व्यवस्था एवं राज्यों के मध्य संचार (कनेकटिवीटी)

पर जोद दिया गया। ऑशियान देशों द्वारा 36वां सम्मेलन 6 अप्रैल 2020 में दॉनांग शहर में, 37वाँ सम्मेलन 11 नवम्बर 2020 हनोई शहर में, 38वाँ सम्मेलन, अप्रैल/मई 2021 में बन्दर सिटी शहर में, तथा 39वाँ सम्मेलन अक्तूबर/नवम्बर 2021 में तय किया गया है।

12.7 मूल्यांकन

राजनीतिक विद्वानों का मानना है कि वियतनाम युद्ध के बाद आसियान ASEAN निरंतर प्रगति के पथ पर है। 1976 के बाली शिखर सम्मेलन ने क्षेत्रीय सहयोग के जो नए आयाम स्थापित किए थे। उन्हें प्राप्त करने के लिए आज आसियान के सदस्य राष्ट्र निरन्तर प्रयास कर रहे हैं। दक्षिण पूर्वी एशिया को मुक्त व्यापार क्षेत्र के रूप में विकसित करने के प्रयास अन्तिम सीमा पर हैं। ASEAN एक ऐसी क्षेत्रीय व्यवस्था के रूप में विकसित हो रहा है जो दक्षिण–पूर्वी एशिया के देशों में आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक व तकनीकी सहयोग के नए आयाम स्थापित करेगा।

लेकिन आज 'ASEAN' के सामने अनेक चुनौतियां है चीन की सामरिक शक्ति में वृद्धि से इसकी सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो गया है। अमेरिका तथा जापान से भी ASEAN की सुरक्षा व्यवस्था को चुनौती मिल रही है। आज ASEAN राष्ट्रों के पास आर्थिक विकास के स्थान पर आर्थिक पिछड़ेपन का ही मूल मंत्र है। पर्याप्त पूंजी व क्रम शक्ति के अभाव के कारण आर्थिक सहयोग की गति बहुत मन्द है। इन देशों में आपसी मतभेद भी है। इन देशों की विकसित देशों पर निर्भरता निरन्तर बढ़ रही है। इन देशों में पश्चिमी ताकतों के सैनिक अड्डे भी मौजूद हैं। दक्षिण पूर्वी एशियाई राष्ट्रों की अर्थव्यवस्थाओं में बार–बार पैदा होने वाले मुद्रा संकट इसकी कार्यप्रणाली पर बुरा प्रभाव डाल रहे हैं। यदि ASEAN के देश विकसित देशों पर अपनी आर्थिक निर्भरता में कमी करें और आपसी सहयोग की प्रवृत्ति का विकास करें तो दक्षिण पूर्वी एशियाई क्षेत्र में नए आर्थिक सम्बन्धों के अध्याय की शुरूआत होगी और ASEAN एक मजबूर क्षेत्रीय आर्थिक संगठन के रूप में अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों को प्रभावित करने के योग्य होगा।

12.8 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों का यह क्षेत्रीय संगठन एक सफलता उदाहरण है। ऑशियान में जहां शीतयुद्ध के दौरान केवल पाँच देश की सम्मिलित थे। वहीं शीतयुद्धोत्तर युग में सम्पूर्ण क्षेत्र के देश (अर्थात 10) इसके सदस्य बन गए। इसके अतिरिक्त विश्व की प्रमुख शक्तियाँ भी इसके वार्ताकार देश बन गए। शीतयुद्धोत्तर युग में विकास व अर्थव्यवस्था का ऑशियान केन्द्र बिन्दु बन गया है। इसके निरन्तर आयोजित सम्मेलनों द्वारा आज यह क्षेत्र मुक्तव्यापार के माध्यम से एक बड़ा आर्थिक जोन बन गया है। भारत भी शीतकाल के बाद ऑशियान के आर्थिक एक सामरिक साझेदार बन गया है। यह अपनी 'लूक ईस्ट' व 'एक्ट ईस्ट' की नीतियों के द्वारा इन देशों से मधुर सम्बन्ध बना चुका है। वर्तमान बदली हुई विश्व आर्थिक व्यवस्था में ऑशियान का एक प्रमुख स्थान है।

12.9 प्रश्नावली

1. क्षेत्रीय सहयोग संगठन के रूप में ऑशियान का मूल्यांकन कीजिए।
2. ऑशियान की स्थापना, उद्देश्यों एवं भूमिका का विस्तार से वर्णन कीजिए।
3. शीतयुद्धोत्तर युग में ऑशियान के योगदान पर टिप्पणी कीजिए।
4. भारत की 'लूक ईस्ट' व 'एक्ट ईस्ट' नीतियों के अन्तर्गत भारत–ऑशियान संबंधों का वर्णन कीजिए।

12.10 पाठन सामग्री,

1. महेन्द्र कुमार, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सैद्धान्तिक पक्ष (आगरा, 1984)
2. हेंस जे. मारगेन्थाऊ, पॉलिटिक्स अमंग नेशंज (कलकत्ता, 1972)
3. पीटर कलवोसिरेसी, वर्ल्ड पॉलिटिक्स सिंस, 1945 (लन्दन, 1987)
4. नार्मन डी. पामर एवं होवर्ड डी पकिंज, इन्टरनेशनल रिलेसन्ज, (कलकत्ता, 1970)
5. जॉन बेलिस एवं स्टीव स्मीथ, सम्पा०, ग्लोबलाईजेसन ऑफ वर्ल्ड पॉलिटिक्स (न्ययार्क, 2002)
6. अनीकचटर्जी, इन्टरनेशनल रिलेसंज टूडे (दिल्ली, 2010)
7. रूमकी बासु, सम्पा०, इन्टरनेशनल पॉलिटिक्स : कन्सेपटस, थ्यौरिज एण्ड इश्यूज, (सेज, 2012)
8. क्रिस्टीयन रूसेमित एवं डंकन एनीडल, सम्पा०, दॉ ऑक्सफोर्ड हेंडबुक ऑफ इन्टरनेशनल रिलेसंज, (ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रैस, 2010)

अध्याय–13

एशिया प्रशान्त आर्थिक सहयोग (एपेक)

अध्याय का ढ़ांचा

13.1 प्रस्तावना

13.1.1 अध्याय के उद्देश्य

13.2 एपेक का गठन

13.3 एपेक के उद्देश्य

13.4 एपेक के सम्मेलन

13.5 मूल्यांकन

13.6 सारांश

13.7 प्रश्नावली

13.8 पाठन सामग्री

13.1 प्रस्तावना

APEC विश्व में मुक्त व्यापार का सबसे प्रबल समर्थक संगठन है। यह संगठन एशिया महाद्वीप के प्रशान्त महासागरीय तटीय देशों में व्यापारिक गतिविधियों को सरल व सुगम बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। अन्य क्षेत्रीय संगठनों की तरह यह भी एशिया महाद्वीप के प्रशान्त महासागरीय तटीय क्षेत्रों में मुक्त व्यापार व्यवस्था द्वारा क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग को बढ़ाने में महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। APEC एक प्रादेशिक व्यवस्था होने के बावजूद भी अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के खिलाफ नहीं है। 1997 के वेंकूवर बैठक में APEC ने अपने सदस्य देशों से कहा कि वे अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग में भी अप्रत्यक्ष भूमिका है।

13.1.1 अध्याय के उद्देश्य

इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य एशिया–प्रशान्त क्षेत्र में होने वाले आर्थिक सहयोग की जानकारी प्रदान करना है। यह कार्य इस क्षेत्र की एक महत्त्वपूर्ण संस्था–एशिया–प्रशान्त आर्थिक सहयोग (एपेक)–की विस्तृत जानकारी के माध्यम से दी गई है। एपेक संस्था की उत्पत्ति, सदस्यता, उद्देश्यों पर विभिन्न शिखर सम्मेलनों आदि में विचार किए गए मुद्दों के आधार पर दी गई है। इसके मूल्यांकन से यह भी स्पष्ट हुआ है कि एशिया–प्रशान्त क्षेत्र की राजनीति में एपेक की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

13.2 एपेक का गठन

APEC ऑस्ट्रेलिया के प्रधानमन्त्री बॉब हॉक की सोच का परिणाम हैं। इसकी स्थापना 1989 में हुई। इसमें प्रारम्भ में 12 देश शामिल हुए जो हैं – ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका, जापान, दक्षिण कोरिया, कनाडा, मलेशिया, न्यूजीलैण्ड, मलेशिया, थाईलैंड, सिंगापुर, फिलिपीन्स, ब्रुनेई तथा इंडोनेशिया। 1991 में 2 वर्ष पश्चात APEC में चीन, ताईवान तथा हांगकांग शामिल हो गाए। 1993 में पापुआ न्यूगायना तथा मैक्सिको ने इसकी सदस्यता ग्रहण की। 1994 में चिली

भी इसका सदस्य बन गया और इसकी सदस्य संख्या 19 तक पहुंच गई। बाद में पीरू व रूस की सदस्यता के बाद यह 21 हो गई है।

13.3 एपेक केउद्देश्य

इसके प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. सदस्य राज्यों में आपसी आर्थिक सहयोग तथा व्यापार बढ़ाना।
2. एशिया प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र को मुक्त आर्थिक क्षेत्र के रूप में विकसित करना।
3. सदस्य देशों में निवेश प्रवाह में वृद्धि करना तथा निवेश संरक्षण को मजबूत बनाना।
4. आर्थिक विकास के लिए निजी क्षेत्र का सहयोग प्राप्त करना।
5. अपने वांछित लक्ष्यों को पूरा करने के लिए सदस्य देशों को एक मंच पर लाना तथा उनमें एकता की भावना का विकास करना।

13.4 एपेक के सम्मेलन

APEC के सम्मेलन व उसमें लिए गए निर्णय निम्नलिखित हैं–

1. प्रथम शिखर सम्मेलन

APEC का प्रथम शिखर सम्मेलन नवम्बर, 1993 में अमेरिका के सिएटल शहर में हुआ। इसमें सदस्य देशों को आपसी आर्थिक सहयोग को बढ़ाने पर जोर दिया गया और एशिया प्रशान्त महासागरीय तटीय क्षेत्र को मुक्त व्यापार क्षेत्र के रूप में विकसित करने पर जोर दिया गया।

2. द्वितीय शिखर सम्मेलन

APEC का दूसरा शिखर सम्मेलन 1994 में बोगोर (इंडोनेशिया) में हुआ। इस सम्मेलन में मुक्त व्यापार एवं निवेश का मुद्दा ही प्रमुख रहा। सदस्य देशों ने इस दिशा में कार्य करने के लिए सर्वसम्मति से निर्णय लिया। अधिक विकसित देशों को इस लक्ष्य को प्रापत करने के लिए 2010 तथा शेष को 2020 तक का समय दिया गया।

3. तीसरा शिखर सम्मेलन

इसका तीसरा शिखर सम्मेलन 1995 में इसाका में हुआ। इसमें आर्थिक सहयोग को बढ़ावा देने के लिए संकल्पवाद लचीलेपन तथा सर्वसम्मत चिंतन के सिद्धान्तों के आधार पर कार्य करने के लिए एक कार्ययोजना का प्रारूप तैयार किया गया। इस कार्य योजना को सर्वत्र सराहा गया।

4. विदेशी मन्त्रियों का सम्मेलन

APEC के वाणिज्य तथा विदेश मन्त्रियों का वार्षिक सम्मेलन नवम्बर 1996 में सूबिक खाडक तथा मनीला में आयोजित हुआ। इसमें सूचना प्रौद्योगिकी (तकनीक) के बाजार को उदार बनाने पर सहमति हो गई तथा मुक्त व्यापार क्षेत्र के विकसित होने से रोकने वाले सभी प्रतिरोधों को समाप्त करने के लिए पकार्ययोजना के नाम से अनुमोदित कार्य योजना के अंतर्गत विकसित अर्थव्यवस्था के लिए 2010 तक तथा अविकसित या विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं के लिए 2020 तक मुक्त व खुले व्यापार तथा निवेश के प्रावधानों को कार्यरूप देने पर सहमति हुई। सम सम्मेलन में WTO की दिसम्बर, 1996 में होने वाली बैठक में सूचना तकनीक के समझौते को पूरा करने पर भी निर्णय लिया गया। इस सम्मेलन में अमेरिका ने 2000 तक सीमा

शुल्क शून्य करने पर जोर दिया, लेकिन मलेशिया तथा अन्य विकासशील देशों ने इसका विरोध किया। विकासशील देशों ने कहा कि इससे उन देशों को हानि पहुंचेगी, जो अपनी तकनीक तथा उद्योगों को विकसित करने तथा मार्किट में अपना उचित स्थान बनाने की कोशिश कर रहे हैं। इसने चीन तथाा ताईवान को WTO में प्रवेश देने के मुद्दे पर विचार किया गया। सम्मेलन के अन्त में जारी घोषणापत्र में इनको सदस्यता देने से सभी ने मना कर दिया। लेकिन इस सम्मेलन में ASEAN के एकमात्र सदस्य 'वियतनाम' जो अब तक APEC की सदस्यता से वंचित था को भी सदस्यता प्रदान करने का निर्णय लिया गया और रूस को भी इसमें शामिल करने पर सहमति हो गई। इसमें सदस्य देशों से आह्मन किया गया कि वे APEC में आर्थिक सहयोग एवं विकास के सिद्धान्तों के आधार पर स्थिर विकास के लिए कार्य करें। इस सम्मेलन में APEC में आर्थिक सहयोग व विकास में वृद्धि करने के लिए निजी क्षेत्र को भी शामिल करने की आवश्यकता पर बल दिया गया।

5. वेंकूवर बैठक

APEC के वाणिज्य व विदेश मन्त्रियों की एक बैठक सन् 1997 में हुई। इस बैठक में स्थिर विकास के लिए मन्त्रियों में रिपोर्ट मांगी गई जो 1996 की मनीला बैठक में सुनिश्चित की गई थी। इस बैठक में मन्त्रियों को कहा गया कि वे व्यापारी वर्ग गतिविधियों को आसान बनाने के लिए उनके साथ मिलकर कार्य करें व उन्हें हर तरह की सम्भव सहायता दें। इस बैठक में व्यापार क्षेत्र को विकसित करने के लिए APEC व्यापार परिषद की सिफारिशें लागू करने के साधनों की समीक्षा करने की आवश्यकता पर भी बल दिया गया। इसमें निवेश के प्रवाह तथा संरक्षण की आवश्यकता पर बल देने के साथ–साथ आधारभूत कार्य योजना में निजी क्षेत्र को भी शामिल करने की बात कही गई। इस तरह यह बैठक अधिक उदारीकरण के साथ आर्थिक सहयोग व व्यापार में वृद्धि को लेकर सम्पन्न हुई।

6. शंघाई सम्मेलन

APEC देशों का नई सदी का प्रथम शिखर सम्मेलन 19 से 21 अक्तूबर 2001 तक शंघाई (चीन) में हुआ। इसमें सदस्य देशों द्वारा आपसी आर्थिक सहयोग तथा व्यापार बढ़ाने के मुद्दे पर खुली बातचीत हुई और APEC को खुला आर्थिक क्षेत्र बनाए जाने के उद्देश्य को दोहराया गया। इस सम्मेलन में अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद को आर्थिक विकास के मार्ग में सबसे बड़ी रूकावट माना गया और इसे एकजुट होकर समाप्त करने की आवश्यकता पर बल दिया गया। इस सम्मेलन में प्रथम बार एक राजनीतिक घोषणा पत्र जारी किया गया जिसमें अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद का मुद्दा प्रमुख था।

7. इसके उपरान्त 2001 से 2018 तक 17 अन्य सम्मेलन प्रतिवर्ष एपेक के एक देश में आयोजित हुए। 2019 की 31वां सम्मेलन स्थगित हो गया। 2020 का 32वां सम्मेलन नवम्बर में मलेशिया में प्रस्तावित है। आगे के तीन सम्मेलन 33वां (2021), 34वां (2022), व 35वां (2023) क्रमशः न्यूजीलैंड, थाईलैंड एवं दक्षिण कोरिया में प्रस्तावित है।

13.5 मूल्यांकन

1989 से लेकर आज तक APEC निरंतर विकास के मार्ग पर है। यह सदस्य देशों में आपसी आर्थिक सहयोग बढ़ाने की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। यह एशिया प्रशान्त महासागरीय तटीय देशों में मुक्त व्यापार क्षेत्र विकसित करने के लिए निरन्तर प्रयासरत है। इसकी सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि इसके सदस्य देशों में अधिक सहयोग की भावना नहीं है। चीन अधिक उदारीकरण का विरोध करता रहा है। WTO में चीन व ताईवान की सदस्यता को लेकर APEC के देश आपसी फूट का शिकार हैं। अमेरिका अपनी दादागिरी कायम करने के उद्देश्य से निरन्तर

APEC के लक्ष्यों को प्राप्त करने के मार्ग में व्यवधान उत्पन्न करता रहता है। अमेरिका सयीमा भूतकों को शून्य करने पर जोर देता रहा है, लेकिन कम विकसित देश इसका विरोध करते आ रहे हैं। चीन व ताईवान WTO में शामिल होने से आना–कानी करते आ रहे हैं। वे अपने बाजारों को सदस्य देशों के लिए पूरी तरह खोलने को तैयार नहीं हैं। उनको खतरा है कि इससे उनको लाभ के स्थान पर हानि अधिक होगी। चीन के WTO में शामिल होने सम्बन्धी प्रस्तावों से अमेरिका व उसके पिछलग्गू देश सन्तुष्ट नहीं है। अमेरिका की अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के बारे में भी नीति भेदभावपूर्ण है। इस तरह APEC के देशों में जो आपसी मतभेद हैं, उनके चलते एशिया प्रशान्त महासागर के तटीय क्षेत्रों को मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाना कठिन काम है। इसे मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाने के लिए APEC के सदस्य देशों को आपसी मतभेद भुलाकर इस दिशा में कुछ सकारात्मक व ठोस कदम उठाने होंगे। इसी से APEC एक शक्तिशाली संगठन के रूप में उभरेगा और इस क्षेत्र में आर्थिक सम्बन्धों का नया अध्याय शुरू होगा।

13.6 सारांश

उपरोक्त अध्ययन यह स्पष्ट है कि एपेक एशिया–प्रशान्त क्षेत्र में सहयोग विकसित करने हेतु एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इसमें विश्व की महत्त्वपूर्ण शक्तियों के साथ–साथ वहां के स्थानियों राज्यों को भी सदस्यता प्रदान की गई है। इसके विभिन्न आर्थिक व शिखर सम्मेलनों में विचार विमर्श से इसे दुनिया का बड़ा व्यापार क्षेत्र बनाने के प्रयास है। इसमें आपसी सहयोग के साथ–साथ मुक्त बाजार व्यवस्या को भी बढ़ावा दिया गया है। वर्तमान में भारत को इसकी सदस्यता प्रदान न कर एपेक एक बड़ी भूल कर रहा है, क्योंकि आज भारत की अर्थव्यवस्था ऑशियान के माध्यम से काफी हद तक जुडी हुई है। यह एपेक के लिए एक अच्छी स्थिति उत्पन्न करती है।

13.7 प्रश्नावली

1. एपेक को क्षेत्रीय सहयोग में भूमिका का वर्णन कीजिए।
2. एशिया–प्रशान्त क्षेत्र के बढ़ते आर्थिक सहयोग की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
3. स्मकालीन विश्व राजनीति में एपेक के सहयोग का वर्णन कीजिए
4. क्या भारत की एशिया–प्रशान्त में भूमिका को देखते हुए इसे एपेक की सदस्यता प्रदान करनी चाहिए? अपने विचार के पक्ष में तर्क दीजिए।

13.8 पाठन सामग्री

1. महेन्द्र कुमार, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सैद्धान्तिक पक्ष (आगरा, 1984)
2. हेंस जे. मारगेन्थाऊ, पॉलिटिक्स अमंग नेशंज (कलकत्ता, 1972)
3. पीटर कलवोसिरेसी, वर्ल्ड पॉलिटिक्स सिंस, 1945 (लन्दन, 1987)
4. नार्मन डी. पामर एवं होवर्ड डी पकिंज, इन्टरनेशनल रिलेसन्ज, (कलकत्ता, 1970)
5. जॉन बेलिस एवं स्टीव स्मीथ, सम्पा०, ग्लोबलाईजेसन ऑफ वर्ल्ड पॉलिटिक्स (न्ययार्क, 2002)
6. अनीकचटर्जी, इन्टरनेशनल रिलेसंज टूडे (दिल्ली, 2010)
7. रूमकी बासु, सम्पा०, इन्टरनेशनल पॉलिटिक्स : कन्सेपटस, थ्यौरिज एण्ड इश्यूज, (सेज, 2012)
8. क्रिस्टीयन रूसेमित एवं डंकन एनीडल, सम्पा०, दॉ ऑक्सफोर्ड हेंडबुक ऑफ इन्टरनेशनल रिलेसंज, (ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रैस, 2010)

अध्याय–14

अमेरिकी राज्यों का संगठन (ओ.ए.एस)

अध्याय का ढ़ांचा

14.1 प्रस्तावना

14.1.1 अध्याय के उद्देश्य

14.2 ओ.ए.एस. की सदस्यता

14.3 ओ.ए.एस. के उद्देश्य

14.4 ओ.ए.एस. की संरचना

14.4.1 अन्तर अमेरिकी सभा

14.4.2 विदेश मन्त्रियों की परामर्श समिति

14.4.3 परिषद

14.4.4 अमेरिकी भ्रातृत्व संघ

14.4.5 विशिष्ट अभिकरण

14.5 ओ.ए.एस. सम्बन्धित घोषणा पत्र

14.5.1 ओ.ए.एस. तथा ब्यूनस आयर्स सन्धि

14.5.2 ओ.ए.एस. तथा उरूग्वे घोषणापत्र

14.6 मूल्यांकन

14.7 सारांश

14.8 प्रश्नावली

14.9 पाठन सामग्री

14.1 प्रस्तावना

1823 के मुनरो सिद्धान्त ने ही अन्तर अमेरिका क्षेत्रवाद के बीज बो दिए थे। इससे प्रभावित होकर ही अमेरिकी राज्यों ने विश्व में अपनी पहचान स्थापित करने के लिए पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता पर बल दिया और अमेरिकी राज्यों को संगठित करने के लिए पनामा में 1826 में एक अमेरिकी राज्यों का सम्मेलन बुलाया गया। इसके बाद इसको मजबूती प्रदान करने के लिए 1890 में अन्तर अमेरिकी कांफ्रेंस हुई। अमेरिकी राज्यों को संगठित करने का सर्वाधिक ठोस प्रयास द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद शुरू आया। समान प्रतिरक्षा, खनिज पदार्थो के आदान–प्रदान, वित्तीय और सांस्कृतिक सहयोग की आवश्यकता को समस्त अमेरिकी राज्यों ने अनुभव करके 1948 में बोगोटा सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन ने 'अमेरिकी राज्यों का संगठन' (OAS) की नींव डाली। आज OAS एक विस्तृत व

सुदृढ़ क्षेत्रीय व्यवस्था है जो अब अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में सक्रिय एवं महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है। इसके कार्यक्षेत्र का विस्तार समस्त अमेरिका महाद्वीप में फैला हुआ। इसका अपना चार्टर है। इसमें 18 अध्याय व 112 धाराएं है। इसको धारा 1 के अंतर्गत एक प्रादेशिक अभिकरण बताया गया है।

14.1.1 अध्याय के उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य अमेरिकी महाद्वीप में एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्रीय सहयोग के संगठन – औरगनाईजेशन ऑफ अमेरिकन स्टेटस (ओ.ए.एस.) – के बारे में आवश्यक जानकारी प्रदान करना है। इस अध्याय में ओ.ए.एस. के गठन, आवश्यकताओं, सदस्यता, संरचना एवं कार्यशैली का विस्तार से वर्णन किया गया। इसके साथ इन राष्ट्रों में होने वाले समझौतों एवं घोषणाओं का भी आंकलन किया गया है ताकि इनके बीच आपसी सहयोग को जाना जा सके। यहां इन राष्ट्रों की गतिविधियों का मूल्यांकन कर आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं सहयोग के बिन्दुओं का पता लगाया जा सके।

14.2 ओ.ए.एस की सदस्यता

OAS में अधिकतर अमेरिकी राज्यों ने सदस्यता ग्रहण की है। प्रारम्भ में इसकी सदस्य संख्या 21 थी जो अब लगभग 25 है। कनाडा व बोलीविया को इसकी सदस्यता से निकाल दिया गया है। सभी अमेरिकी राज्य इसकी सदस्यता ग्रहण कर सकते हैं व छोड़ सकते हैं। लेकिन सदस्यता छोड़ने से पूर्व दो वर्ष का नोटिस देना आवश्यकता होता है। इसकी सदस्यता समानता के सिद्धान्त पर आधारित है। इसमें प्रत्येक राज्य को एक–एक मत ही देने का अधिकार प्राप्त है।

14.3 ओ.ए.एस. के उद्देश्य

इस संगठन के चार्टर में इसके उद्देश्यों पर पूरा प्रकाश डाला गया है। और इनकी प्राप्ति के लिए राज्यों को अपनी नीतियों में तालमेल बैठाने का निर्देश दिया गया है। इसके प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. शान्ति व न्याय पर आधारित व्यवस्था को स्थापित करना।
2. अमेरिकी राज्यों की एकता व स्थिरता को प्रोत्साहित करना।
3. सदस्य राज्यों के मध्य आदान–प्रदान में वृद्धि करना।
4. सदस्य राज्यों की सम्प्रभुता, क्षेत्रीय अखण्डता एवं स्वतन्त्रता की रक्षा करना।

14.4 ओ.ए.एस. की संरचना

OAS के कुछ प्रधान अंग हैं जिनकी सहायता से यह अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करता है। ये प्रमुख अंग निम्नलिखित हैं–

14.4.1 अन्तर अमेरिकी सभा

यह OAS का प्रमुख अंग है। इसे OAS की महासभा भी कहा जाता है। इसमें सभी सदस्य राज्यों के प्रतिनिधि शामिल हैं। इसकी बैठक प्रत्येक पांच वर्ष बाद होती है। स्थान का निर्धारण आपसी सहमति पर आधारित होता है। इसका प्रमुख कार्य संगठन की नीतियां व कार्यक्रम का निर्धारण करना है। इसके निर्णय बहुमत पर आधारित होते हैं। यह निर्णयों में सर्वसम्मति के सिद्धान्त का पूरा पालन करने का प्रयास करती है। इसे OAS की सर्वोच्च संस्था माना जाता है।

14.4.2 विदेश मन्त्रियों की परामर्श समिति

इसका कार्य तत्कालिक कार्यो या महत्वपूर्ण कार्यो पर विचार करने के लिए बैठक बुलाना है। इसमें समान हित के मुद्दों पर विचार किया जाता है। यह निरोधक शक्ति से परिपूर्ण संस्था है जो अपने सदस्य राज्यों को विशेष मामलों में आदेश दे सकती हैं इसकी सहायता के लिए एक परामर्शदात्री प्रतिरक्षा समिति भी है।

14.4.3 परिषद

इसमें सभी सदस्य राज्यों को प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। यह संगठन के विभिन्न अंगों के कार्यो की देखभाल के साथ–साथ शान्ति तथा सुरक्षा सम्बन्धी कार्य भी करती है। इसकी स्थिति सुरक्षा परिषद जैसी है। इसका सत्र निरन्तर चलता रहता है। यह संगठन की प्रमुख तालमेल स्थापित करने वाली संस्था है। यद्यपि यह OAS के पहले दोनों अंगो के अधीन है लेकिन इसकी भूमिका अति प्रभावशाली है। यह अमेरिकी भ्रातृत्व संघ तथा अपनी सहायक परिषदों की कार्यप्रणाली पर भी नियंत्रण रखती है। आर्थिक व सामाजिक परिषद तथा शिक्षा व विज्ञान परिषद इसकी सहायक परिषद है। इनके कार्यो पर OAS परिषद पूरा नियंत्रण रहता है। यह परिषद समाज सदस्यता व समान मताधिकार के सिद्धान्त के आधार पर कार्य करती है और इसका कार्यालय वाशिंगटन में है।

14.4.4 अमेरिकी भ्रातृत्व संघ

यह OAS की केन्द्रीय व स्थायी संस्था तथा सचिवालय है। यह संगठन के समस्त कर्मचारियों का समूह है। इसका प्रमुख महासचिव होता है जो अन्तर–अमेरिकी कान्फ्रेंस (महासभा) द्वारा चुना जाता है। इसकी अवधि 10 वर्ष होती है। इसका कार्यालय वाशिंगटन में है।

14.4.5 विशिष्ट अभिकरण

ये अभिकरण विशेषतापूर्वक कार्यो का निष्पादन करते हैं। इनका कार्यक्षेत्र विषय विशेष तक ही सीमित होता है। परामर्शदात्री सुरक्षा समिति, अन्तर–अमेरिकी आर्थिक और सामाजिक परिषद, अन्तर–अमेरिकी न्यायिक परिषद, अन्तर–अमेरिकी सांस्कृति परिषद, अन्तर–अमेरिकी कृषि विज्ञान परिषद, अन्तर–अमेरिकी बाल संस्था, अन्तर अमेरिकी मानवाधिकार आयोग, अन्तर–अमेरिकी स्त्री आयोग आदि OAS के सहायक व विशिष्ट अभिकरण हैं।

14.5 ओ.ए.एस. सम्बन्धित घोषणा पत्र

14.5.1 ओ.ए.एस. तथा ब्यूनस आयर्स सन्धि

OAS की स्थापना के समय इसके घोषणा पत्र में अनुमोदित प्रावधान कालान्तर में अपर्याप्त व अव्यावहारिक प्रतीत होने लगे। इन प्रावधानों को अधिक सुस्पष्ट व व्यापक बनाने हेतु 1967 में अर्जेन्टाइना की राजधानी यूनस आयर्स में OAS का सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन में उत्तर–अमेरिकी सहयोग के नए आयाम (मानदण्ड) स्थापित किए गए और OAS के संगठनात्मक स्वरूप में भी कुछ परिवर्तन किए गए। 27 फरवरी, 1967 को सभी सदस्य राज्यों द्वारा इसे सर्वसम्मति से अनुमोदित करके एक सन्धि का रूप दे दिया गया। यह सन्धि 1967 से ही प्रभावी है।

14.5.2 ओ.ए.एस. तथा उरूग्वे घोषणापत्र

दक्षिणी अमेरिकी के देश उरूग्वे में 14 अप्रैल, 1967 को अमेरिकी राष्ट्रपतियों का सम्मेलन हुआ जिसके घोषणा पत्र ने OAS को को अनेक नए उत्तरदायित्व सौंपे। इसमें दक्षिणी अमेरिकी आर्थिक सहयोग को प्रोत्साहन देना, ग्रामीण जनता की जीवन दशा सुधारना, कृषि उत्पादन में वृद्धि करना, तकनीकी विकास एवं स्वास्थ्य के क्षेत्र में नए कार्यक्रम क्रियान्वित करना शामिल है। इससे OAS का क्षेत्राधिकार अधिक व्यापक हुआ है।

14.6 ओ.ए.एस. का मूल्यांकन

यद्यपि OAS एक प्रभावशाली संस्था है जिसे UNO का विश्वास प्राप्त है। परन्तु राजनीतिक विवादों के बारे में इसे आंशिक सफलताएं ही मिली हैं। अमेरिका की दादागिरी की नीति ने इस संगठन को सर्वाधिक हानि पहुंचाई है। क्यूबा तथा ग्रेनाडा जैसे देश अमेरिका की इस नीति का शिकार हुए हैं। ग्वाटेमाला की शिकायत पर यह निकारागुआ के खिलाफ कोई ठोस निर्णय लेने में असक्षम रहा हे। हैती की समस्या का भी हल करने में यह संगठन प्रायः नाकाम ही रहा है। इसलिए अनेक विचारकों ने इसकी राजनीतिक उपयोगिता पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। लेकिन उनका यह विचार पूर्णतयाः सत्य नहीं है। आज इसके सदस्य राज्यों की जनसंख्या 50 करोड़ है जो अमेरिकी महाद्वीप के बड़े हिस्से का प्रतिनिधित्व करना था जिस पर यह आज भी कायम है। आज यह अन्तर अमेरिकी आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक सहयोग में वृद्धि करने के लिए कृतसंकल्प है। यह अपने सदस्य राज्यों में आर्थिक सहयोग के सेतु के रूप में कार्य करता है। आर्थिक सहयोग के साथ–साथ यह राजनीतिक सहयोग में भी वृद्धि कर रहा है। आज इसके सदस्य राज्य सामूहिक रूप से किसी भी बाहरी आक्रमण का सामना करने के लिए एकजुट हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि OAS एक मजबूत क्षेत्रीय संगठन है।

14.7 सारांश

उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि यह संगठन अमेरिका द्वारा अपने महाद्विपय राज्यों के मध्य एकता के साथ–साथ साम्यवाद से विरोध स्वरूप गठित किया गया। इस दृष्टिकोण से यह संगठन काफी हद तक सफल भी रहें। कुछ अपवाद स्वरूप सभी अमेरिकी महाद्वीप के देश इसके सदस्य बने। क्यूबा की स्थिति शीतयुद्ध में अवश्य विरोधात्मक थी, इसीलिए सदस्यता भी नहीं दी गई। वर्तमान में क्यूबा को सदस्यता की प्रार्थना की गई लेकिन उसी ने इसे लेने से इन्कार कर दिया। परन्तु कुल मिलाकर ऑशियान के बाद यह क्षेत्रीय सहयोग का सफल संगठन है।

14.8 प्रश्नावली

1. अमेरिकी महाद्वीप से क्षेत्रीय सहयोग के संगठन का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।
2. ओ.ए.एस. की स्थापना, उद्देश्य व कार्यशैली का विस्तार से वर्णन करें।
3. ओ.ए.एस. की स्थापना से आज तक आपसी सहयोग के बिन्दुओं पर प्रकाश डालिए।
4. शीतयुद्धोत्तर युग में ओ.ए.एस. की प्रासांगिकता का विस्तार से वर्णन कीजिए।

14.9 पाठन सामग्री

1. महेन्द्र कुमार, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सैद्धान्तिक पक्ष (आगरा, 1984)
2. हेंस जे. मारगेन्थाऊ, पॉलिटिक्स अमंग नेशंज (कलकत्ता, 1972)
3. पीटर कलवोसिरेसी, वर्ल्ड पॉलिटिक्स सिंस, 1945 (लन्दन, 1987)
4. नार्मन डी. पामर एवं होवर्ड डी पकिंज, इन्टरनेशनल रिलेसन्ज, (कलकत्ता, 1970)
5. जॉन बेलिस एवं स्टीव स्मीथ, सम्पा०, ग्लोबलाईजेसन ऑफ वर्ल्ड पॉलिटिक्स (न्ययार्क, 2002)
6. अनीकचटर्जी, इन्टरनेशनल रिलेसंज टूडे (दिल्ली, 2010)
7. रूमकी बासु, सम्पा०, इन्टरनेशनल पॉलिटिक्स : कन्सेपटस, थ्यौरिज एण्ड इश्यूज, (सेज, 2012)
8. क्रिस्टीयन रूसेमित एवं डंकन एनीडल, सम्पा०, दॉ ऑक्सफोर्ड हेंडबुक ऑफ इन्टरनेशनल रिलेसंज, (ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रैस, 2010)

अध्याय–15

शस्त्र नियंत्रण एवं निःशस्त्रीकरण

अध्याय का ढ़ांचा

15.1 प्रस्तावना

15.1.1 अध्याय के उद्देश्य

15.2 शस्त्र नियंत्रण एवं निःशस्त्रीकरण से अभिप्राय

15.3 निःशस्त्रीकरण के प्रकार

15.3.1 सामान्य एवं स्थानीय निःशस्त्रीकरण

15.3.2 मात्रात्मक एवं गुणात्मक निःशस्त्रीकरण

15.3.3 पारस्परिक तथा आणविक निःशस्त्रीकरण

15.3.4 पूर्ण एवं आंशिक निःशस्त्रीकरण

15.3.5 अनिवार्य और ऐच्छिक निःशस्त्रीकरण

15.4 निःशस्त्रीकरण एवं शस्त्र नियंत्रण क्यों?

15.4.1 निःशस्त्रीकरण अंतर्राष्ट्रीय तनाव कम करता है

15.4.2 निःशस्त्रीकरण से आर्थिक विकास का मार्ग विकसित होता है

15.4.3 निःशस्त्रीकरण से युद्ध की सम्भावना में कमी आती है

15.4.4 निःशस्त्रीकरण जन–कल्याण का मार्ग है

15.4.5 शस्त्रीकरण से विवादों का शान्तिपूर्ण समाधान नहीं हो सकता

15.4.6 शस्त्रीकरण सर्वनाम का दूत है

15.4.7 शस्त्रीकरण से अवांछित हस्तक्षेप को बढ़ावा मिलता है

15.4.8 शस्त्रीकरण नैतिकता के विपरीत है

15.5 निःशस्त्रीकरण एवं शस्त्र नियंत्रण हेतु किए गए प्रयास

15.5.1 प्रथम विश्व युद्ध से पहले

15.5.2 प्रथम विश्व युद्ध से द्वितीय विश्व युद्ध तक

15.5.3 द्वितीय विश्व युद्ध से शीत–युद्ध के अन्त तक

15.5.4 शीतयुद्ध के अंत से वर्तमान समय तक

15.6 सारांश

15.7 प्रश्नावली

15.8 पाठन सामग्री

15.1 प्रस्तावना

मनुष्य ही मानवता का सबसे बड़ा शत्रु है। संघर्ष व युद्ध मानव स्वभाव का आवश्यक अंग है। लेकिन जब इनका कोई ठोस आधार नहीं हो तो ये मानवता के विनाश के कारण बनते हैं। युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले पक्ष की तो जीत होती है लेकिन सम्पूर्ण मानवता की हार होती है। मानव सभ्यता का इतिहास युद्धों का इतिहास है। मनुष्य शक्ति व सत्ता प्राप्ति के लिए सदैव युद्धों का सहारा लेता रहा है। दो विश्व युद्धों के पीछे भी यही मूल कारण था। पाषाण युग से आधुनिक युग तक की मनुष्य की विकास यात्रा में अनेक युद्धों का अस्तित्व रहा है। युद्धों ने शान्ति के विचार को कमजोर किया है। मनुष्य के स्वभाव में शान्ति का विचार भी उतना ही प्रबल है जितना युद्ध का। हीगल जैसे जर्मन आदर्शवादियों ने तथा अन्य अन्ध राष्ट्रवादियों ने सदैव युद्ध में ही विश्वास किया है लेकिन प्रबद्ध राष्ट्रवाद में विश्वास रखने वाले व्यक्तियों या देशों ने शान्ति के विचार को युद्ध के विचार से ज्यादा महत्व दिया है। युद्ध का सहारा लेने वाले राष्ट्र अपने राष्ट्रीय हितों को प्राप्त करने के लिए इसका बार–बार दुरूपयोग करते आए हैं। युद्ध प्रिय राष्ट्र शस्त्रों के निर्माण व भण्डारण को प्राथमिकता देते हैं। आज जिस गति से शस्त्रों का निर्माण हो रहा है उससे मानवता को भयंकर खतरा उत्पन्न हो गया है। प्रथम विश्व युद्ध के बाद तो शस्त्र निर्माता देशों ने अपने–अपने देशों में शस्त्र बाजारों का मजबूती से विकास किया है ताकि कमजोर से कमजोर देश भी शस्त्र खरीद सकें। आज अनेक देशों के पास परमाणु आयुद्य हैं। जो सम्पूर्ण विनाश के सूचक हैं। आज हम परमाणु युग में जी रहे हैं। आज चारों दिशाओं में आतंक का ही संतुलन है। आणविक शस्त्रों के आगे न कोई देश कमजोर है और न शक्तिशाली। दो विश्व युद्धों ने मानव को युद्ध की विभिषिका से बचाने के लिए सोचने को विवश कर दिया है। इन युद्धों के पीछे शस्त्र होड़ ही प्रमुख कारण थी। आज बुद्धिजीवी वर्ग ने शस्त्र नियंत्रण व निःशस्त्रीकरण के द्वारा विश्व शांति के विचार को सुदृढ़ बनाने की दिशा में प्रयास करने के लिए प्रेरित किया है। तीसरे विश्व युद्ध के खतरे से बचने के लिए शस्त्र नियंत्रण तथा निःशस्त्रीकरण के सिवाय हमारे सामने कोई विकल्प नहीं है।

15.1.1 अध्याय के उद्देश्य

इस अध्याय का मूल उद्देश्य शस्त्र नियंत्रण एवं निःशस्त्रीकरण का विस्तार पूर्वक वर्णन करना है। सर्वप्रथम इन दोनों अवधारणाों से क्या अभिप्राय है तथा ये दोनों किस प्रकार भिन्न है कि जानकारी दी गई है। इसके बाद शस्त्र नियंत्रण व निःशस्त्रीकरण की आवश्यकता के बारे में बताया गया है। तद्उपरान्त निःशस्त्रीकरण हेतु विभिन्न चरणों में किए गए प्रयासों की विस्तृत जानकारी दी गई है। अन्ततः विश्लेषण के बाद इसके भविष्य को सम्भावनाओं का उल्लेख किया गया है। अतः यह अध्याय समग्र रूप से शस्त्र नियन्त्रण व निःशस्त्रीकरण की चुनौतियों एवं उपलब्धियों का पूरा लेखा जोखा प्रस्तुत करती है।

15.2 शस्त्र नियंत्रण तथा निःशस्त्रीकरण से अभिप्राय

यद्यपि शस्त्र नियंत्रण तथा निःशस्त्रीकरण एक जैसे शब्द लगते हैं लेकिन इन दोनों में सुक्ष्म अन्तर है। "शस्त्र नियंत्रण में वे सभी प्रयास शामिल हैं जो शस्त्र दौड़ में कमी करके युद्ध की सम्भावनाओं को कम करते हैं या इसके क्षेत्र को सीमित करते हैं। शस्त्र नियंत्रण निःशस्त्रीकरण से अधिक व्यापक अवधारणा है। इसमें भविष्य में हथियारों का नियंत्रण भी शामिल होता है। निःशस्त्रीकरण केवल वर्तमान में अस्तित्ववान शस्त्रों के नियंत्रण से संबंधित होता है जबकि शस्त्र नियंत्रण भविष्य में उत्पादन किए जाने वाले हथियारों पर भी रोक लगाता है। आज शस्त्र नियंत्रण का प्रयोग भावी परमाणु शस्त्रों के उत्पादन को रोकने के लिए अधिक किया जाता है।

शस्त्र नियंत्रण राष्ट्रों में कटौती तथा प्रतिबन्ध के मेल से बनी अवधारणा है जो निकटवर्ती अवधारणा निःशस्त्रीकरण से अधि व्यापक है।

निःशस्त्रीकरण की अवधारणा इस बात पर आधारित है कि शस्त्रास्त्र सैन्य बलों को विघटित कर देने तथा आयुधों को समाप्त कर देने पर ऐसा अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण विकसित होगा, जिसमें युद्ध के स्थान पर शान्ति के लिए महत्वपूर्ण स्थान होगा। इस प्रकार–"निःशस्त्रीकरण उस महाविनाश को रोकने का एक प्रयास है जो युद्ध के रूप में अभिव्यक्ति प्राप्त करता है और जिससे सम्पूर्ण मानवता की हानि होती है।"

मार्गेन्थो ने निःशस्त्रीकरण को परिभाषित करते हुए कहा है – "शस्त्र दौड़ को समाप्त करने के उद्देश्य से विशेष या उसी प्रकार के शस्त्रों की समाप्ति या कटौती निःशस्त्रीकरण कहलाती है।"

इस प्रकार निःशस्त्रीकरण युद्ध सामग्री तथा सैनिकों की संख्या में कटौती का पक्षधर है, जबकि शस्त्र नियंत्रण में वे सभी उपाय शामिल हैं जो शस्त्रों के प्रयोग को सीमिति या नियमित करते हैं। निःशस्त्रीकरण इस विश्व में वर्तमान में अस्तित्ववान शस्त्रों को समाप्त करने या नष्ट करने से सरोकार रखता है। यह शस्त्र नियंत्रण से कम व्यापक है। शस्त्र नियंत्रण भविष्य में उत्पादित शस्त्रों को सीमित या प्रतिबन्धित करता है। साधारण शब्दों में कहा जा सकता है कि निःशस्त्रीकरण वर्तमान में युद्ध सामग्री व सैनिकों को नियंत्रित करने तथा शस्त्र नियंत्रण शस्त्र दौड़ को नियंत्रित करने का प्रयास है।

लेकिन ये दोनों अवधारणाएं एक दूसरे से अलग न होकर एक दूसरे की पूरक हैं। विद्यमान युद्ध सामग्री में कटौती तब तक अपूर्ण ही रहेगी जब तक शस्त्रों के उत्पादन या शस्त्र दौड़ पर रोक न लगाई जाए। इन दोनों के उद्देश्य समान हैं– अंतर्राष्ट्रीय जगत में शस्त्रों पर नियंत्रण या कटौती द्वारा मानव समाज को युद्ध की विभीषिका से बचाना। इसलिए वर्तमान समय में इन दोनों का समान महत्व है। आज परमाणु आयुद्यों के अस्तित्व ने सम्पूर्ण युद्ध की सम्भावना को प्रबल बना दिया है। इसलिए विश्व के सभी देश निःशस्त्रीकरण तथा शस्त्र नियंत्रण की वकालत करते हैं।

15.3 निःशस्त्रीकरण के प्रकार

निःशस्त्रीकरण निम्नलिखित प्रकार का हो सकता है–

15.3.1 सामान्य एवं स्थानीय निःशस्त्रीकरण

सामान्य निःशस्त्रीकरण शस्त्रार्थो का ऐसा परिसीमन है जिस पर अधिकांश राष्ट्र सहमत होते हैं। इसके अतंर्गत सन्धिकर्ता देशों पर गुणात्मक एवं मात्रात्मक नियंत्रण लगाए जाते हैं। इसका उदाहरण 1922 का वॉशिंगटन नौसैनिक समझौता है जिस पर हस्ताक्षर कर तत्कालिक महाशक्तियों ने नौ सैनिक क्षमताओं की होड़ की सम्भावनाओं को कम कर दिया था।

स्थानीय निःशस्त्रीकरण क्षेत्र विस्तार की दृष्टि से सीमित होता है तथा इसमें गिने–चुने राष्ट्र ही शामिल होते हैं। इस प्रकार के निःशस्त्रीकरण का उद्देश्य क्षेत्रीय स्थिरता व शान्ति को सुदृढ़ करना होता है। 1871 का रश बागोट समझौता इसका उदाहरण है।

15.3.2 मात्रात्मक एवं गुणात्मक निःशस्त्रीकरण

मात्रात्मक निःशस्त्रीकरण में सैन्य बलों तथा उपलब्ध शस्त्रास्त्रों का संख्यात्मक परिसीमन किया जाता है। इसका उद्देश्य सब प्रकार के शस्त्रों में कटौती करना है। 1932 का निःशस्त्रीकरण सम्मेलन इसका प्रमुख उदाहरण है। गुणात्मक निःशस्त्रीकरण में विशिष्ट प्रकार के शस्त्रों की कटौती की जाती है। इसमें केवल घातक शस्त्रों का ही

परिसीमन किया जाता है। 1868 के सैंट पीटर्सबर्ग समझौते द्वारा फटने वाली डमडम गोलियों का निषेध किया जाना इसी प्रकार के निःशस्त्रीकरण का उदाहरण है। 1987 की मध्यम दूरी प्रक्षेपास्त्र सन्धि भी (अमेरिकी और सोवियत संघ) इसका प्रमुख कारण है।

15.3.3 पारस्परिक तथा आणविक निःशस्त्रीकरण

पारस्परिक निःशस्त्रीकरण में परम्परागत शस्त्रों व सेनाओं में कटौती का नाम है। आज आणविक युग में परम्परागत शस्त्रों का अधिक महत्व नहीं रह गया है। 1968 की परमाणु अप्रसार सन्धि आणविक निःशस्त्रीकरण का उदाहरण है इसके अंतर्गत आणविक आयुद्यों के विकास व प्रसार को परिसीमित किया गया है।

15.3.4 पूर्ण एवं आंशिक निःशस्त्रीकरण

पूर्ण निःशस्त्रीकरण में सब प्रकार के शस्त्रों को समाप्त करने का प्रयास शामिल है। इसमें आनुपातिक कटौती के स्थान पर सम्पूर्ण कटौती शामिल होती है। इसका अर्थ है एक ऐसी विश्व व्यवस्था की स्थापना जिसमें युद्ध करने के सारे मानवीय और भौतिक साधन समाप्त कर दिए गए हो। इसके तहत समस्त सैन्य बल व सैन्य सामग्री नष्ट कर दी जाएगी। ऐसी स्थिति अभी नहीं है। यह केवल एक मृगतृष्णा ही है। आंशिक निःशस्त्रीकरण में सब प्रकार के शस्त्रों का परिसीमत नहीं किया जाता है। यह सामान्य या स्थानीय संदर्भ में सन्य बलों तथा शस्त्रास्त्रों पर मात्रात्मक एवं गुणात्मक सीमाएं लगाता है जिससे युद्ध की विनाशकता में कमी आती है। SALT-I और SALT-II इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

15.3.5 अनिवार्य और ऐच्छिक निःशस्त्रीकरण

अनिवार्य निःशस्त्रीकरण युद्ध के बाद विजेता राष्ट्रों द्वारा पराजित राष्ट्रों पर थोपा जाता है। प्रथम तथा द्वितीय विश्व युद्धों के बाद जर्मनी का निःशस्त्रीकरण किया जाना इसका प्रमुख उदाहरण है। इस प्रकार का निःशस्त्रीकरण भेदभावपूर्ण होता है और इससे स्थायी शान्ति की नींव नहीं पड़ सकती। इसके विपरीत ऐच्छिक निःशस्त्रीकरण को राष्ट्र स्वेच्छा से स्वीकार करते हैं। 1968 की अणु प्रसार निरोध सन्धि इसका उदाहरण है। इससे शान्ति की नींव मजबूत होती है। यह स्थायी होता है। इसे बाध्यकारी बल की आवश्यकता नहीं होती है।

15.4 निःशस्त्रीकरण तथा शस्त्र नियंत्रण क्यों?

(Why Disarmament and Arms Control?)

शस्त्रीकरण के दुष्परिणामों को संसार दो विश्व युद्धों के परिणामों के रूप में झेल चुका है। जापान ने तो परमाणु शस्त्रीकरण के व्यापक प्रभावों की जो मार सही है, वह सर्वविदित है। आज तक मनुष्य ने शस्त्रों के बल पर जितने शान्ति के प्रयास किए हैं वे अस्थायी ही रहे हैं। शान्ति को स्थाई रूप में कायम करने के लिए निःशस्त्रीकरण तथा शस्त्र–नियंत्रण का होना अति आवश्यक है। इनके अभाव में विश्व शान्ति का विचार निर्मूल सा प्रतीत होता है। निःशस्त्रीकरण विभिन्न महाशक्तियों में तनावा में कमी करके स्थायी शान्ति स्थापित करता है। आज आणविक युग में तो इसका महत्व और ज्यादा है। हम जिस वातावरण में जी रहे हैं वह अशान्त व अविश्वास का है। शस्त्रीकरण ने मानव व प्राकृतिक संसाधनों का दुरूपयोग किया है। इसने राष्ट्रों के मध्य तनावों को जन्म दिया है। इसने तृतीय विश्वयुद्ध की सम्भावना को प्रबल बना दिया है। आज शान्ति, सुरक्षा व समृद्धि के लिए इसकी अत्यंत आवश्यकता है। निःशस्त्रीकरण और शस्त्र नियंत्रण ही केवल एकमात्र ऐसा उपाय है जो विश्व शान्ति के विचार को प्रबल बना सकता है। इसलिए निःशस्त्रीकरण व शस्त्र–नियंत्रण की आवश्यकता निम्न कारणों से है –

15.4.1 निःशस्त्रीकरण अंतर्राष्ट्रीय तनाव कम करता है

शस्त्रीकरण से शस्त्र–निर्माण की दौड़ में वृद्धि होती है। सभी राष्ट्र अल्प सुरक्षा के नाम पर शस्त्रों का भंडारण करने लग जाते हैं। इससे वे दूसरे के हितों की उपेक्षा करने का अपराध कर बैठते हैं। इससे अंतर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। राज्यों में वैमनस्य की भावना प्रबल हो जाती है। ऐसे में सदैव युद्ध का खतरा बना रहता है। इसलिए अंतर्राष्ट्रीय शान्ति की स्थापना के लिए तनाव घटाना आवश्यक है और तनाव घटाने के लिए शस्त्र दौड़ तथा शस्त्र दौड़ घटाने के लिए निःशस्त्रीकरण या शस्त्र नियंत्रण।

15.4.2 निःशस्त्रीकरण से आर्थिक विकास का मार्ग विकसित होता हैं

सभी नवोदित राष्ट्रों ने अपने आर्थिक विकास ने अनेक प्रयत्न किए हैं, लेकिन उनके सारे प्रयास असफल ही रहे हैं। अपना स्वतन्त्र राजनीतिक अस्तित्व बनाए रखने के लिए इन देशों ने शस्त्र उत्पादन तथा शस्त्र–भण्डारण पर पानी की तरह पैसा बहाया है। शस्त्र दौड़ का प्रभाव विकसित देशों पर भी पड़ा है। इसलिए जब तक इन देशों का अधिकतर बजट शस्त्रों की खरीद–फरोख्त पर व्यय होगा, ये देश अपना आर्थिक विकास नहीं कर सकते। इसलिए आर्थिक विकास के लिए शस्त्रों पर खर्च किए जाने वाले व्यय को रोकना अति आवश्यक है। ऐसा केवल निःशस्त्रीकरण या शस्त्र–नियंत्रण द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

15.4.3 निःशस्त्रीकरण से युद्ध की सम्भावना में कमी आती है

यह बात सत्य है कि आज लड़ाई दो सेनाओं के बीच न होकर, दो हथियारों के बीच होती है। जिस देश के पास पर्याप्त मात्रा में अस्त्र–शस्त्र हो, वह दूसरों के लिए भी प्रेरणा स्त्रोत बन जाता है। शक्ति मनुष्य को पथभ्रष्ट करती है और अत्यधिक शक्तिशाली होना नाश का कारण बनता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अमेरिका द्वारा जापान पर बमों का प्रयोग किया जाना उसके शक्ति प्रदर्शन का ही एक अंग था। शक्ति प्रदर्शन का सबसे अच्छा अवसर युद्ध होता है। इसलिए दूसरे देश की तरह प्रत्येक देश सैन्य या शस्त्र शक्ति में वृद्धि करना चाहता है ताकि जरूरत पड़ने पर उसका प्रयोग किया जा सके। यदि किसी देश के पास शस्त्र न हों तो वह युद्ध में अधिक विनाशकारी भूमिका नहीं निभा सकता। शस्त्र दौड़ को अपने राष्ट्रीय हितों के रूप में परिभाषित करने की जो प्रवृति द्वितीय विश्व युऋ के बाद बढ़ रही है, वह विश्व शान्ति के लिए खतरनाक है। शस्त्रीकरण अंतर्राष्ट्रीय वैमनस्य को बढ़ावा देकर, अन्त में युद्ध का कारण बनता है। अतः आज सबसे अधिक आवश्यकता शस्त्र दौड़ को रोकने की है ताकि तृतीय विश्वयुद्ध की सम्भावनाओं को धूमिल किया जा सके। इसके लिए यह जरूरी है कि अन्धाधुन्ध शस्त्र दौड़ व शक्ति प्रदर्शन से बचा जाए। ऐसी परिस्थिति में निःशस्त्रीकरण ही एक मात्र उपाय है जो हमें युद्ध की विभीषिका से बचाकर शान्ति के मार्ग की ओर ले जा सकता है।

15.4.4 निःशस्त्रीकरण जन–कल्याण का मार्ग है

आज शास्त्र दौड़ के युग में गरीब से गरीब देश भी अपने राष्ट्रीय सुरक्षा व हितों के नाम पर शस्त्रों को खरीदने या उनका निर्माण करने पर अरबों–खरबों रूपये खर्च करते हैं। इससे वे अपनी जनता की मूलभूत आवश्यकताएं पूरी न करने के दोषी बन जाते हैं। यदि आज जो राशि शस्त्र दौड़ पर खर्च हो रही है, उसे जनकल्याण के कार्यों पर खर्च कर दिए जाए तो समस्त विश्व की कायापलट हो सकती है। विश्व में बढ़ रही भुखमरी, गरीबी, बेरोजगारी तथा अकाल जैसी समस्याओं का सफलतापूर्वक निदान किया जा सकता है। शस्त्र मनुष्य का पेट नहीं भर सकते और न तन ढांपने के लिए उसे कपड़ा दे सकते हैं। आइजहावर ने इस बात में अपना मत देते हुए कहा है कि "प्रत्येक बन्दूक जिसे बनाया जाता है, प्रत्येक युद्धपोत जिसका जलावरण किया जाता है, प्रत्येक रॉकेट जिसे छोड़ा जाता है, अन्तिम अर्थो में उन लोगों के प्रति जो भूखे रहते हैं और जिन्हें खाना नहीं खिलाया जाता है, जो ठिठुरते हैं किन्तु उन्हें वस्त्र नहीं दिए जाते, एक चोरी का सूचक है।" आज सभी देश आर्थिक विकास के संसाधनों का शस्त्र साधनों

पर जो खर्च कर रहे हैं, वह विश्व के भावी कल्याण के लिए शुंभ संकेत नहीं है। इससे जन कल्याण का मार्ग अवरुद्ध होगा। यदि हमें जनकल्याण को बढ़ावा देना है और विश्व में सच्ची शान्ति की स्थापना करनी है तो शस्त्रों पर किए जाने वाले खर्च की दिशा आर्थिक विकास की ओर करनी होगी। आज विश्व शान्ति व समृद्धि के लिए आवश्यकता शस्त्रों की नहीं, निःशस्त्रीकरण की है। निःशस्त्रीकरण ही एक ऐसा उपाय है जो विश्व से भुखमरी, गरीबी, कुपोषण जैसी भयानक समस्याओं का निदान कर सकता है। इससे बढ़कर जनकल्याण का मार्ग कोई दूसरा नहीं हो सकता।

15.4.5 शस्त्रीकरण से विवादों का शान्तिपूर्ण समाधान नहीं हो सकता

शस्त्रीकरण से अंतर्राष्ट्रीय संबंधो में कटुता व वैमनस्य की भावना का जन्म होता है। एक देश दूसरे देश से अवांछित व्यवहार करना आरम्भ कर देता है। शस्त्र शक्ति से सम्पन्न देश कमजोर देशों पर अपनी नीतियां थोपकर मनमाना हस्तक्षेप करने की प्रवृति को जन्म देता है। घृणा और द्वेष का नकारात्मक वातावरण पैदा होने लगता है। परस्पर विवाद इतने अधिक बढ़ जाते हैं कि उनके स्थायी युद्ध में बदलने की पूर्ण सम्भावना रहती है। शान्तिपूर्ण उपायों के लिए ऐसे अशान्त व विवादपूर्ण वातावरण में कोई स्थान नहीं होता हैं इसलिए शस्त्रीकरण पर नियंत्रण आवश्यक बन जाता है। निःशस्त्रीकरण ही ऐसा साधन है जो अंतर्राष्ट्रीय विवादों के स्थायी समाधान के लिए शान्त व सकारात्मक वातावरण का निर्माण करता है।

15.4.6 शस्त्रीकरण सर्वनाश का दूत है

आज विश्व के शास्त्रस्त्रों की जो होड़ बढ़ रही है, वह विश्व शान्ति के लिए शुभ संकेत नहीं है। आज बम्ब के आविष्कार ने द्रुतगामी प्रक्षेपास्त्रों को जन्म दे दिया है। आज एक स्थान पर ही बैठकर परमाणु शस्त्रों को ले जाने वाले वाहनों का बटन दबाकर विश्व के किसी भी कोने में विनाश किया जा सकता है। जापान पर द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान प्रयोग किए गए बम एकमात्र ट्रेलर थे। आज यदि अणुशक्ति की पूरी फिल्म देख ली जाए तो पृथ्वी पर कुछ भी नहीं बचेगां सम्पूर्ण पृथ्वी एक अन्धकारमय आवरण से ढक जाएगी। अणु शक्ति के प्रयोग के बाद हजारों वर्षो तक जारी रहने वाला विकिरण भविष्य में मानव जाति के जन्म की सभी सम्भावनाओं को निर्मूल कर देगा। ऐसे सर्वनाश से बचने को एकमात्र उपाय यही है कि शस्त्रीकरण की बजाय शस्त्र नियंत्रण व निःशस्त्रीकरण पर ध्यान दिया जाए ताकि सम्पूर्ण मानव जाति व पृथ्वी को महाविनाश से बचाया जा सके।

15.4.7 शस्त्रीकरण से अवांछित हस्तक्षेप को बढ़ावा मिलता है

शस्त्रीकरण असुरक्षा को ऐसा वातावरण निर्मित कर देता है कि कमजोर से कमजोर देश भी शस्त्र प्राप्ति के लिए विकसित देशों या शस्त्र निर्माता धनी देशों पर निर्भर हो जाता है। शीतयुद्ध के दौरान अमेरिका और सोवियत संघ ने शस्त्रीकरण को जिस कदर बढ़ावा दिया, वह विश्व शान्ति के लिए सबसे घातक बना हुआ। अस्त्र आपूर्ति के नाम पर इन महाशक्तियों ने अवांछित हस्तक्षेप का जो खेल विश्व में खेला, वह सर्वविदित है। इसी तरह की प्रवृति आज भी है। अमेरिका जैसा देश पाकिस्तान के आर्थिक व राजनीतिक मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। इससे एशिया महाद्वीप में शान्ति को सबसे बड़ा खतरा बना हुआ है। महाशक्तियों द्वारा ऐसा हस्तक्षेप अनुचित है। इससे गरीब राष्ट्रों पर अनुचित दबाव पड़ता है। इसलिए यदि गरीब देशों की शस्त्र आवश्यकताओं कम हो जाएं या समाप्त हो जाएं तो विकसित देशों को विकासशील देशों में हस्तक्षेप का अवसर नहीं मिलेगा। उनकी इस निर्भरता को निःशस्त्रीकरण के द्वारा ही कम किया जा सकता है।

15.4.8 शस्त्रीकरण नैतिकता के विपरीत है

शस्त्रीकरण युद्ध को जन्म देता है और युद्ध सदैव अनैतिक होता है। राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर शस्त्रों का उत्पादन या संग्रह करना अनैतिक है। युद्ध राष्ट्रीय हितों को प्राप्त करने का नैतिक साधन नहीं है। इससे मानवता की हानि

होती है। नैतिकतावादी विचारकों का कहना है कि अच्छे साध्य की प्राप्ति के लिए साधन भी अच्छे ही होने चाहिए। इसलिए निःशस्त्रीकरण ही एक ऐसा उपाय है जो नैतिकता के अधिक निकट हो सकता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि निःशस्त्रीकरण ही विश्व शान्ति की स्थापना का सच्चा आधार हो सकता है। आज विश्व में चारों तरफ आतंक का जो संतुलन है, उसे निःशस्त्रीकरण के प्रयासों से ही कम या समाप्त किया जा सकता है। मानव जाति के अस्तित्व को आज सबसे अधिक खतरा आणविक हथियारों से है। निःशस्त्रीकरण के बिना सम्पूर्ण विनाश को नहीं रोका जा सकता है। इसलिए आज अनेक राजनेता, कूटनीतिज्ञ, दार्शनिक व वैज्ञानिक विश्व में शस्त्र–दौड़ को कम करने या समाप्त करने की आवश्यकता पर बल दे रहे हैं। लेकिन कुछ स्वार्थी व्यक्ति निःशस्त्रीकरण की बजाय शस्त्रीकरण को अधिक महत्व देते हैं। उनका कहना है कि निःशस्त्रीकरण से हजारों कारखाने बन्द हो जाएंगे और अनेक देशों में बेरोजगारी तथा भुखमरी बढ़ जाएगी। इससे तकनीकी विकास का मार्ग अवरुद्ध होगा। उनका यह तर्क अधिक अच्छा नहीं है। मानव ज्ञान का मानवता के विनाश के लिए प्रयोग करना अनुचित व अनैतिक है। आज मनुष्य जाति को विनाश से बचाने के लिए निःशस्त्रीकरण या शस्त्र नियंत्रण की अत्यधिक आवश्यकता है। विश्व राजनेताओं द्वारा इस दिशा में सकारात्मक प्रयास करने चाहिए ताकि विश्व शान्ति का आधार मजबूत हो। तीसरे विश्व युद्ध की सम्भावनाएं क्षीण हों और मानवता की सुरक्षा व समृद्धि की गारन्टी प्राप्त हो।

15.5 निःशस्त्रीकरण तथा शस्त्र–नियंत्रण के लिए किए गए प्रयास

निःशस्त्रीकरण का इतिहास भी उतना ही पुराना है जितना शस्त्रीकरण का जब से मनुष्य ने शस्त्र निर्माण और उनके की कला सीखी, साथ में उनके दुष्प्रभावों की चिन्ता भी सताने लगी। मनुष्य सदैव शास्त्रास्त्रों से भय खाता आया है और शान्ति के बारे में विचार करता रहा हैं। उसकी या शासन सत्ता की तरफ से निःशस्त्रीकरण के बराबर प्रयास किया जाते रहे हैं। लेकिन प्रारम्भिक चरण में उसे आंशिक सफलता भी प्राप्त नहीं हुई। निःशस्त्रीकरण का प्रथम प्रयास सैद्धान्तिक तौर पर 1648 ई. में शुरू हुआ। इस समय वैस्टफालिया की सन्धि में प्रथम बार अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण तथा सैनिक शक्ति में कटौती का अनुभव किया गया। उस समय से आज तक इसकी निरन्तर प्रगति हो रही है। निःशस्त्रीकरण के इतिहास को निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है–

15.5.1 प्रथम विश्व युद्ध से पहले

प्रथम विश्व युद्ध से पहले 1648 की वैस्टफालिया सन्धि भी निःशस्त्रीकरण की दिशा में प्रथम प्रयास थी। इसके बाद 1817 में रश–बेगोट समझौते द्वारा कनाडा–अमरीका सीमांत को निःसैन्य करने पर सहमति जताई। निःशस्त्रीकरण की दिशा में यह प्रथम व्यवस्थित प्रयास था जिस पर ब्रिटेन तथा अमेरिका ने सामूहिक रूप से स्वीकार किया। 1831 के फ्रांसीसी निःशस्त्रीकरण प्रस्ताव में भी असैन्यकृत विश्व की कल्पना की गई, लेकिन इसे ज्यादा महत्व नहीं दिया गया। इसके बाद 1868 की सैन्ट पीटर्सबर्ग सन्धि में भी फटने वाली डमडम गोलियों के प्रयोग की मनाही की गई। 1870 में ब्रिटेन भी नियोजना का प्रस्ताव रखा लेकिन इसका भी वही काल हुआ जो 1981 की फ्रांसीसी योजना का हुआ था। इसके उपरान्त 1874 में बैसेल्स प्रस्तावों में भी वायु प्रक्षेपास्त्रों के प्रयोग की मनाही की गई। इसे भी व्यापक समर्थन नहीं मिल सका।

19वीं सदी के अन्त में 1899 के प्रथम हेग सम्मेलन में मानव कल्याण व विश्व शान्ति के लिए शस्त्रार्थी में कटौती करने पर विचार किया गया। इस सम्मेलन में हवा में से मार करने वाले अस्त्रों तथा विस्फोटकों को दागने पर प्रतिबंध लगाया गया और बेहोश करने वाली गैसा का प्रयोग भी वर्जित किया गया। इसके बाद 1907 में सामूहिक निःशस्त्रीकरण का सार्थक प्रयास द्वितीय हेग सम्मेलन में किया गया। इस सम्मेलन में सैनिक व्यय में कटौती का प्रस्ताव लाया गया लेकिन। इन दोनों सम्मेलनों ने युद्ध के संचालन को विनिमय करने तथा युद्ध की

क्रूरताएं कम करने के प्रयासों की नींव अवश्य डाल दी। 1914 में प्रथम विश्व युद्ध की शुरूआत ने विश्व शान्ति के सारे उपायों को समाप्त कर दिया और 1914 से पूर्व निःशस्त्रीकरण के सभी प्रयास कल्पना की वस्तु बनकर रह गए।

15.5.2 प्रथम विश्व युद्ध से द्वितीय विश्व युद्ध तक

1919 में प्रथम विश्व युद्ध के समाप्त होते ही विश्व शांति के प्रयास तेज हो गए। इस युद्ध में प्रयोग किए गए हथियारों के प्रभावों पर व्यापक विचार विमर्श हुआ। भविष्य में ऐसे किसी भी युद्ध की सम्भावना को रोकने के लिए राष्ट्र संघ की स्थापना पर विचार किया गया और विश्व शांति बनाए रखने का उत्तरदायित्व इसे ही सौंपा गया। इसलिए प्रथम विश्व युद्ध के बाद राष्ट्रसंघ के अन्दर व इससे बाहर दोनों तरफ निःशस्त्रीकरण के प्रयास किए गए।

1. **राष्ट्र संघ द्वारा किए गए प्रस्ताव** – राष्ट्र संघ के संविधान में धारा 8 के अंतर्गत शान्ति स्थापना के लिए राष्ट्रीय शास्त्रास्त्रों को राष्ट्रीय सुरक्षा के अनुरूप कम करने के लिए निःशस्त्रीकरण समझौतों का प्रयास करने का प्रावधान किया गया। लीग की सदस्यता ग्रहण करने वाले देशों को शस्त्र नियंत्रण को स्वीकार करने की शर्त स्वीकार करना अनिवार्य था। 28 जून 1919 की वर्साय संधि को स्वीकार करने वाले देशों ने राष्ट्र संघ के सदस्यों के रूप में अपनी सैनिक शक्ति में कमी लाने का प्रथम व्यवहारिक प्रयास किया। इसके अंतर्गत विजेता राष्ट्रों द्वारा हारे हुए देशों का अनिवार्य निःशस्त्रीकरण किया।

राष्ट्रसंघ ने अपनी निःशस्त्रीकरण की कार्य योजना को व्यावहारिक रूप देने के लिए निम्नलिखित प्रयास किए –

1. **स्थायी परामर्शदाता आयोग** – राष्ट्रसंघ ने निःशस्त्रीकरण प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए जनवरी, 1920 में स्थायी परामर्शदाता आयोग की स्थापना की। विशुद्ध सैनिक संगठन होने के नाते यह निःशस्त्रीकरण की समस्याओं पर गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं कर सका। इसलिए नवम्बन, 1920 में इसमें 6 असैनिक सदस्यों को शामिल करके इसे अस्थायी मिश्रित आयोग में बदल दिया गया। अतः इससे निःशस्त्रीकरण की दिशा में अधिक प्रगति नहीं हुई।
2. **जेनेवा प्रोटोकोल** – इसका उद्देश्य मध्यस्थता द्वारा सुरक्षा और सुरक्षा से निःशस्त्रीकरण के प्रयास करना था। 15 जून, 1925 को प्रोटोकोल का अनुसरण करते हुए सामान्य निःशस्त्रीकरण सम्मेलन बुलाने पर विचार विमर्श हुआ लेकिन ग्रेट ब्रिटेन ने इसे स्वीकार नहीं किया। इस प्रयास राष्ट्रसंघ द्वारा जेनेवा प्रोटोकोल व्यवस्था के तहत किया गया निःशस्त्रीकरण का प्रयास असफल हो गया।
3. **निशस्त्रीकरण आयोग–** 1924 में अस्थायी मिश्रित आयोग द्वारा काम करना बन्द कर देने पर इसकी जगह राष्ट्र संघ ने सज्जीकरण आयोग की स्थापना की। इसका कार्य निःशस्त्रीकरण सम्मेलन के लिए तैयारी करना था। इस आयोग ने 1930 तक निःशस्त्रीकरण मतभेदों को दूर करने में कोई महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल नहीं की। 1930 में व्यापक विचार विमर्श के बाद इस आयोग ने अपनी कार्य योजना का ढांचा पेश किया। इस योजना की मुख्य बातें निम्नलिखित थी

   (क) रासायनिक तथा जीवाणु फैलाने वाले युद्धों पर रोक लगाई जाए।

   (ख) स्थल युद्ध की सामग्री का मात्रात्मक तथा गुणात्मक परिसीमन किया जाए।

   (ग) अनिवार्य सैनिक सेवा को निश्चित सीमा तक कम किया जाए।

   (घ) हवाई अस्त्रों को अश्व–शक्ति के आधार पर सीमित किया जाए।

   (ड.) स्थायी निःशस्त्रीकरण आयोग की स्थापना की जाए।

4. **जेनेवा सम्मेलन** – सज्जीकरण आयोग की प्रमुख बातों को ही ध्यान में रखकर 13 फरवरी, 1932 को राष्ट्र संघ का निःशस्त्रीकरण सम्मेलन जेनेवा में हुआ। इसमें 61 राष्ट्रों के 232 प्रतिनिधियों ने अपने 337 प्रस्तावों सहित भाग लिया। यद्यपि यह सम्मेलन निःशस्त्रीकरण की दिशा में एक व्यवस्थित प्रयास था लेकिन मंचूरिया संकट की काली छाया भी इस पर पड़ी। इस सम्मेलन में निम्नलिखित बातों पर विचार हुआ।

   (क) आक्रमणकारी को कठोरतापूर्वक सजा देना तथा पंचनिर्णय को अनिवार्य बनाना।

   (ख) विवादों को मध्यस्थता द्वारा हल करना।

   (ग) राष्ट्र संघ की सुरक्षात्मक शक्ति का विकास अर्थात दण्डात्मक सेना का निर्माण

लेकिन परस्पर सहयोग की भावना के अभाव के कारण यह सम्मेलन असफल रहा। इस सम्मेलन में प्रत्येक देश अपनी–अपनी धाक जमाने की फिराक में था। जर्मनी ने शस्त्रास्त्रों में समान कटौती का विचार रखा। उसने कहा कि वर्साय की सन्धि के अनुसार जो अन्याय उसके साथ हुआ था। उसे समाप्त किया जाए। अब उसे भी अन्य यूरोपीय शक्तियों के समान ही सैन्य शक्ति का विकास करने का अवसर मिलना चाहिए। जब उसकी बात को मानने से इंकार कर दिया गया तो उसने राष्ट्र संघ के इस निःशस्त्रीकरण सम्मेलन से दूर होने की घोषणा कर दी। इस प्रकार राष्ट्र संघ के सदस्य देशों के भेदभावपूर्ण व्यवहार व गलत नीतियों के कारण निःशस्त्रीकरण के इस व्यवस्थित प्रयास को गहरा आघात पहुंचा।

राष्ट्र संघ के बाहर किए गए प्रयास

1919 से 1939 तक विभिन्न देशों ने विश्व शांति को बढ़ावा देने के उद्देश्य से आपस में अनेक वार्ताएं की जिससे निःशस्त्रीकरण को बढ़ावा मिला। इस दौरान किए गए निःशस्त्रीकरण के प्रयास निम्नलिखित हैं–

1. **वॉशिंगटन नौ–सैनिक सम्मेलन–** यह सम्मेलन 12 नवम्बर, 1921 से 6 फरवरी, 1922 तक वॉशिंगटन (अमेरिका) में हुआ। सइ सम्मेलन में सात सन्धियां की गई। इसमें संयुक्त राज्य अमेरिका ने भी राष्ट्र संघ का सदस्य न होते हुए भी ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, बैल्जियम, हॉलैंड, पुर्तगाल, चीन व जापान के साथ भाग लिया। इस सम्मेलन का उद्देश्य विभिन्न देशों में नौ सेना के विस्तार के लिए अंतर्राष्ट्रीय शान्ति में बाधक प्रतिस्पर्धा को रोकना था। इस सम्मेलन में 'नौसैनिक प्रतिस्पर्धा परिसीमन सन्धि पर सभी देशों ने हस्ताक्षर किए। इस सन्धि में नवीन विशाल नौ सैनिक पोत बनाने, अड्डे स्थापित करने, वर्तमान नौ सैनिक अड्डों की नए सिरे से किला बन्दी करने पर सहमति हुई। लेकिन इस सम्मेलन में पनडुब्बियों, छोटे युद्धपोतों विध्वंसकों के सम्बन्ध में कोई आम राय नहीं बन सकी। फ्रांस ने इस सन्धि का समर्थन नहीं किया। इसलिए इसका व्यापारिक रूप नहीं बन सका और अंतर्राष्ट्रीय नौ–सैनिक शक्तियों में निर्णय प्रतिस्पर्धा जारी रही।

2. **जेनेवा नौ–सेना सम्मेलन** – अमेरिका की पहल पर 1927 में एक नवीन नौ सैनिक समझौता करने हेतु जेनेवा में सम्मेलन बुलाया गया। फ्रांस व इटली इसमें शामिल नहीं हुए। अमेरिका, जापान व ब्रिटेन के मध्य विचार विमर्श तक ही यह सम्मेलन सिमटकर रह गया। इस तीनों देशों में भी आपस में आप सहमति नहीं बन सकी। अतः यह सम्मेलन भी अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल रहा।

3. **लन्दन नौ–सेना सम्मेलन** – 1927 के जेनेवा सम्मेलन के असफल रहने पर नवीन प्रयास के रूप में प्रथम लन्दन नौसेना सम्मेलन 21 जनवरी 1930 को प्रारम्भ हुआ। इस सम्मेलन में नौ सैनिक शक्ति को समतुल्यता के आधार पर घटाने के लिए सभी देशों को कहा गया। इटली ने फ्रांस के साथ, जापान ने ब्रिटेन तथा अमेरिका के साथ समतुल्यता शक्ति को घटाने पर विचार किया। इसमें हुए सन्धि के कारण

अमेरिका तथा जापान ने ब्रिटेन के साथ मिलकर क्रूजरों, विध्वंसकों तथा पनडुब्बियों में भार वाहक क्षमता को सीमिता करना स्वीकार किया। फ्रांस तथा इटली ने इस सन्धि पर अपनी असहमति व्यक्त की। इस सन्धि की प्रमुख बातें निम्नलिखित थी

(क) इस सन्धि के अनुसार ब्रिटेन ने 5, अमेरिका ने 3 तथा जापान ने 1 बड़ा युद्ध पोत नष्ट करने पर सहमति जताई।

(ख) पांच महाशक्तियों ने 1936 तक नए युद्धपोतों के निर्माण पर रोक लगा दी।

(ग) सामान्य युद्ध पोतों पर 5.1 इंच से अधिक तथा बड़े युद्ध पोतों पर 6.1 इंच से अधिक व्यास की तोपे न लगाने पर सहमति हुई।

(घ) इसमें पनडुब्बियों का आकार 2000 टन तक घटाने पर समझौता हुआ।

लेकिन इस सन्धि का एक दोष यह था कि इसकी एक धारा में हस्ताक्षर करने वाले देशों को यह अधिकार दिया गया था कि यदि अंतर्राष्ट्रीय स्थिति खराब हो जाती है तो सन्धिकर्ता देश फिर से शस्त्रास्त्रों का निर्माण कर सकते है। यही प्रावधान इसकी असफलता का सबसे बड़ा कारण था।

4. **द्वितीय लंदन नौ–सेना सम्मेलन** – इसका प्रयास 1935 में अन्तिम रूप से साकार हुआ। यह सम्मेलन 9 दिसम्बर, 1935 से आरम्भ होकर 25 मार्च 1936 तक चला। इस सम्मेलन में सभी महाशक्तियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में जापान ने ब्रिटेन और अमेरिका के बराबर जल सेना रखने की मांग की। प्रथम सम्मेलन की तरह यह भी परस्पर विरोधी मांगों का अखाड़ा मात्र बन गया। इटली ने भी फ्रांस के साथ नौ सैनिक शक्ति की समतुल्यता की मांग की। इस तरह जापान और इटली ने इसमें कोई सहयोग नहीं दिया। इस सन्धि पर केवल अमेरिका, ब्रिटेन तथा फ्रांस ने ही हस्ताक्षर किए। लेकिन जापान और इटली के सहयोग के बिना यह सम्मेलन अधिक सफल नहीं रहा। इस सम्मेलन में भाग लेने वाले देशों ने केवल भविष्य में नौ–सेना निर्माण सम्बन्धी कार्यक्रमों की सूचनाओं का परस्पर आदान–प्रदान करने का निर्णय किया।

इस प्रकार इस दौरान किए गए सन्धियां व समझौते किसी बाध्यकारी शक्ति के अभाव के कारण असफलता का ताज बनते गए और विश्व के अनेक देशों में परस्पर वैमनस्य की भावना बढ़ती रही। सभी महाशक्तियों ने शस्त्र दौड़ को जारी रखा। अन्त में शस्त्र प्रतिस्पर्धा ने अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में कटुता पैदा कर दी और इसकी परिणति द्वितीय विश्व युद्ध के रूप में हुई।

15.5.3 द्वितीय विश्वयुद्ध से शीत–युद्ध के अन्त तक

शस्त्र दौड़ ने द्वितीय विश्वयुद्ध को जन्म दिया। इसके परिणाम प्रथम विश्वयुद्ध से भी अधिक भयानक थे। इस युद्ध में प्रथम बार आणविक प्रहार किए गए। इससे जापान के दो शहर हिरोशिमा और नागासाकी आणविक हथियारों का निशाने बने। इस युद्ध की भयानक विनाश लीला ने विश्व को नए सिरे से शान्ति के लिए विचार करने को विवश कर दिया। इसलिए विश्व के अनेक देशों ने निःशस्त्रीकरण और शस्त्र नियंत्रण के उपाय तलाशने शुरू कर दिए। यद्यपि शीत युद्ध की उग्रता ने निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी उपायों को ठेस अवश्य पहुंचाई, लेकिन इस दौरान अमेरिका और सोवियत संघ द्वारा निःशस्त्रीकरण के प्रयास भी किये गए ताकि तृतीय विश्व युद्ध या शीत युद्ध को वास्तविक युद्ध में परिवर्तित होने पर रोक लग सके। 1990 में सोवियत संघ के विघटन तक निःशस्त्रीकरण के लिए किए गए प्रयास निम्नलिखित हैं–

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद निर्मित अंतर्राष्ट्रीय संस्था संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) ने निःशस्त्रीकरण

या शस्त्र नियंत्रण की जिम्मेदारी अपने प्रसिद्ध अंग सुरक्षा या महासभा को सौंप दी। UNO के चार्टर की धारा 2, 11, 26, 47 में निःशस्त्रीकरण का उल्लेख किया गया है।

2. **अणु शक्ति आयोग** – जनवरी 1946 में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा एक अणु शक्ति आयोग की स्थापना करने का निर्णय लिया गया। इस आयोग का उद्देश्य एक ऐसी योजना का निर्माण करना था जो राष्ट्र परमाणु शक्ति के उत्पादन को अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण के अंतर्गत रखने को तैयार हो जाए ताकि परमाणु ऊर्जा का प्रयोग शान्तिपूर्ण कार्यो के लिए किया जा सके। सुरक्षा परिषद ने इस आयोग को निर्देश दिया कि वह निम्नलिखित विषयों पर प्रस्ताव तैयार करे–

(अ) अणु शक्ति का प्रयोग केवल शान्तिपूर्ण कार्यो के लिए करना सुनिश्चित बनाना।

(ब) अणु शक्ति के वैज्ञानिक ज्ञान का शान्तिपूर्ण कार्यो के लिए विभिन्न देशों में आदान–प्रदान।

(स) जन'संहारक अणु आयुद्यों को बहिष्कृत करना।

(द) प्रभावशाली निरीक्षण व्यवस्था का ढांचा तैयार करना ताकि उससे कोई बच न सके।

परम्परागत आयोग की प्रथम बैठक 14 जून 1946 को न्यूयॉर्क में हुई। अमेरिका ने इस बैठक में परमाणु कार्यक्रम पर अपना एकाधिकार बनाए रखने के उद्देश्य से एक ऐसी योजना रखी जो अधिक अन्यायपूर्ण थी। इसलिए सोवियत संघ ने अमेरिका की इस 'बरुच योजना' को अस्वीकार कर दिया। सोवियत संघ ने अणु बमों के संग्रह को नष्ट करने पर जोर दिया। उसने साथ में यह भी कहा अणु शक्ति के दुरूपयोग को रोकने के लिए प्रभावशाली उपाय किए जाए। अमेरिका और सोवियत संध ने अलग–अलग सुझाव पेश करके इस योजना को खटाई में डाल दिया। इसलिए निःशस्त्रीकरण का यह प्रयास भी सफल नहीं हो सका।

3. **परम्परागत–शस्त्र आयोग** – इसकी स्थापना फरवरी, 1947 में की गई। सुरक्षा परिषद के सभी सदस्य इस आयोग में शामिल थे। इस आयोग का उद्देश्य सेना के शस्त्रों पर नियंत्रण रखना तथा उनमें कमी करने का प्रयास तलाशना था। इस आयोग में सोवियत संघ ने सुझाव दिया कि अणु–शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों का सर्वप्रथम निःशस्त्रीकरण किया जाए। लेकिन अमेरिका का कहना था कि शस्त्रों को कम करने पर ही अधिक ध्यान देना चाहिए। सोवियत संघ ने कहा कि प्रत्येक देश को अपनी सेना में 1/3 कटौती करनी चाहिए और परमाणु हथियारों के निर्माण पर रोक लगानी चाहिए तथा जितने परमाणु शस्त्र बन चुके हैं, उन्हें तुरन्त नष्ट कर देना चाहिए। इस तरह परस्पर विरोधी विचारधारा व शीत–युद्ध के चलते अमेरिका और सोवियत संघ ने निःशस्त्रीकरण के इस प्रयास को भी धराशायी कर दिया।

4. **संयुक्त निःशस्त्रीकरण आयोग** – जनवरी, 1952 में परम्परागत शस्त्र आयोग तथा अणु शक्ति आयोग दोनों को मिलाकर संयुक्त निःशस्त्रीकरण आयोग की स्थापना कर दी गई। इसे सुरक्षा परिषद के अधीन रख गया। इस आयोग ने दो समितियों की स्थापना की। एक समिति को हथियारों (अणु आयुद्यों सहित) व सेनाओं के नियमन तथा दूसरी समिति को राष्ट्रों द्वारा सेनाओं व हथियारों सम्बन्धि सूचनाओं पर विचार–विमर्श का उत्तरदायित्व सौंपा गया। इस आयोग में सुरक्षा परिषद् के सभी सदस्यों के साथ–साथ कनाडा का भी शामिल किया गया। इस प्रकार इसकी सदस्य संख्या 12 हो गई। इस आयोग ने अपने व्यापक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए–सैन्य बल के आधार व शस्त्रास्त्रों की संख्या में कटौती, व्यापक निःशस्त्रीकरण सन्धियां, वास्तविक शस्त्र संख्या आदि पर सुझाव दिए। सोवियत संघ ने इस बात पर जोर दिया कि सभी देशों को अपनी सेनाओं में 1/3 कटौती करनी चाहिए। आणविक आयुद्यों पर तुरन्त रोक लगानी चाहिए तथा आणविक ज्ञान का हस्तांतरण करना चाहिए। लेकिन अमेरिक ने आणविक ज्ञान के आदार–प्रदान के उपरान्त ही निःशस्त्रीकरण के उपाय करने पर जोर दिया। इस प्रकार परस्पर मतभेदों के

कारण इस आयोग की कार्यप्रणाली पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा और निःशस्त्रीकरण का यह प्रयास भी अपने पूर्ववर्ती प्रयासों की तरह निरर्थक सिद्ध हुआ।

5. **शान्ति हेतु अणु योजना** – 1953 में अमेरिका के राष्ट्रपति आइजनहावन ने शान्ति हेतु परमाणु योजना प्रस्तुत की। इसमें उन्होंने परमाणु ऊर्जा का प्रयोग शान्तिपूर्ण कार्यो के लिए करने की बात कही। लेकिन उन्होंने परमाणु हथियारों के भविष्य के बारे में कुछ नहीं कहा। इसी बात पर आशंकित होकर सोवियत संघ ने कहा कि परमाणु ऊर्जा का शान्तिपूर्ण कार्यो के लिए प्रयोग करने के लिए यह जरूरी है कि वर्तमान परमाणु आयुद्यों को नष्ट कर दिया जाए। अमेरिका ने सोवियत संघ का यह सुझाव स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार शान्ति की यह योजना भी असफल रही।

6. **जेनेवा सम्मेलन** – जुलाई, 1955 में स्विटजरलैण्ड के जेनेवा नगर में अमेरिका के राष्ट्रपति आइजहावर ने खुली आकाश योजना प्रस्तुत की। इस सम्मेलन में सोवियत, संघ, ब्रिटेन, अमेरिका और फ्रांस ने भाग लिया। इस सम्मेलन में 'मुक्त आकाश योजना' प्रस्तुत करके अमेरिका ने सोवियत संघ के साथ परस्पर सैनिक बजट, वर्तमान शक्ति एवं उसके विकास की सम्भावनाओं का पारस्परिक आदार–प्रदान तथा परस्पर जांच व निरीक्षण करने का रास्त साफ कर दिया। लेकिन सोवियत संघ ने इस योजना को अस्वीकार कर दिया और कहा कि हथियारों की जांच व निरीक्षण के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण अभिकरण की स्थापना की जाए। उसने आणविक शस्त्रों के परीक्षण पर प्रतिबंध तथा परम्परागत शस्त्रों में कटौती करने की आवश्यकता पर भी बल दिया। अमेरिका ने सोवियत संघ की मांगो का विरोध किया जिसके परिणामस्वरूप यह योजना भी निष्क्रिया रही।

7. **निःशस्त्रीकरण आयोग की उप'समिति की बैठक–** 14 जून, 1957 को लन्दन में निःशस्त्रीकरण आयोग की उप–समिति की बैठक हुई। इसमें रूस ने त्रिसूत्री फार्मूला पेश किया गया (क) दो वर्ष के लिए परमाणु परीक्षण रोक दिए जाएं (ख) परीक्षण की रोक को प्रभावी बनाने हेतु एक अंतर्राष्ट्रीय आयोग स्थापित किया जाए। (ग) समझौते के क्रियान्वयन के लिए एक नियंत्रण कक्ष स्थापित किया जाए। परन्तु सोवियत संघ के यह प्रस्ताव पश्चिमी शक्तियों को स्वीकार्य नहीं हुए। इसलिए यह प्रयास भी बेकार सिद्ध हुआ।

8. **निःशस्त्रीकरण की बुलगानिन योजना** – फरवरी, 1958 में सोवियत संघ के प्रधानमन्त्री ने एक निःशस्त्रीकरण योजना का ढांचा पेश किया जिसे बुल्गानिन योजना के नाम से जाना जाता है। इस योजना के प्रमुख प्रस्ताव निम्नलिखित थे–

   (क) सभी तरह के परमाणु व तापनाभिकीय शस्त्रों के परीक्षण पर रोक लगाई जाए।

   (ख) अमेरिका, ब्रिटेन और रूस परमाणु शस्त्रों को नष्ट करें।

   (ग) जर्मनी तथा अन्य यूरोपीय देशों से विदेशी सेनाओं को वापिस बुलाया जाए।

   (घ) आकस्मिक आक्रमणों को रोकने के बारे में समझौता किया जाए।

   (ड.) नाटो तथा वार्सा पैक्ट के देशों में अनाक्रमण समझौता किया जाए।

अमेरिका तथा अन्य पश्चिमी देशों ने सोवियत संघ की योजना को एक प्रचार बताया। इस प्रकार यह योजना भी फ्लॉप हो गई।

9. **रापाकी योजना** – मार्च 1958 में पोलैण्ड के विदेश मन्त्री ने 'रापाकी योजना' प्रस्तुत की जिसमें यूरोप की सुरक्षा व शान्ति के लिए पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया, पश्चिमी और पूर्वी जर्मनी को परमाणु शक्ति विहीन करने का सुझाव दिया गया। इस योजना के तहत इन देशों में आणविक शस्त्रों के निर्माण, संग्रह व उपयोग पर

रोक लगाना प्रस्तावित हुआ। सोवियत संघ ने तो इसका समर्थन कर दिया, लेकिन अमेरिका ने इसे अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार 'रापाकी योजना' ने भी असफलता का ताज पहन लिया।

10. **पूर्ण सर्वमान्य निःशस्त्रीकरण प्रस्ताव** – 18 सितम्बर, 1959 को सोवियत संघ के प्रधानमन्त्री खुश्चेव ने निःशस्त्रीकरण के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में इस प्रस्ताव में कहा कि चार वर्ष के अन्दर सभी राष्ट्रों का इस प्रकार निःशस्त्रीकरण करना चाहिए कि युद्ध के सभी साधन समाप्त हो जाए। इसके साथ–साथ एक आंशिक निःशस्त्रीकरण योजना भी प्रस्तुत की गई जिसमें नाटो व वारसा पैक्ट के देशों में एक अनाक्रमण सन्धि करने, आक्रमण के समय परस्पर सहायता करने, यूरोप के देशों से विदेशी सेना हटाने, मध्य यूरोप को परमाणु विहीन क्षेत्र बनाने पर विचार किया गया। लेकिन शीत–युद्ध की उग्रता के कारण दोनों महाशक्तियों में इस योजना पर आम राय नहीं बन सकी। इसलिए यह योजना भी असफल रही।

11. **दस राष्ट्रीय जेनेवा निःशस्त्रीकरण सम्मेलन–** यह सम्मेलन 1960 में जेनेवा में हुआ इसमें 10 राष्ट्रों ने भाग लिया, ये राष्ट्र थे– ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस, कनाडा, इटली, बुल्गारिया, पोलैण्ड, रूमानिया, सोवियत संघ तथा चेकोस्लोवाकिया। इसमें 5 नाटो के तथा 5 वर्साय सन्धि के देश थे। इसमें प्रथम स्तर की वार्ता में समस्त पक्षों के बीच आणविक व प्रक्षेपास्त्र निःशस्त्रीकरण एवं पारम्परिक सैन्य बल के परिसीमन पर व्यापक चर्चा हुई। द्वितीय स्तर की वार्ता में तीन परमाणु शक्तियों, अमेरिका, सोवियत संघ तथा ब्रिटेन के बीच परमाणु शस्त्र–नियंत्रण, परिसीमत तथा आणविक परीक्षण निषेध पर विचार–विमर्श हुआ। परन्तु परस्तर कोई सर्वमान्य समझौता न होने के कारण यह सम्मेलन भी निष्क्रिय हो गया।

12. **अणु–परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि–** यह निःशस्त्रीकरण की दिशा में एक ऐतिहासिक कदम था। अमेरिका के राष्ट्रपति कैनेडी तथा सोवियत संघ के प्रधानमन्त्री खुश्चेव के प्रयासों से निःशस्त्रीकरण का कुछ विकास हुआ। 15 जुलाई, 1963 को ब्रिटेन, सोवियत संघ तथा अमेरिका ने इस सीमित परमाणु सन्धि पर हस्ताक्षर किए और यह सन्धि 10 अक्तूबर, 1963 को लागू हुई तो इस पर 100 देश हस्ताक्षर कर चुके थे। इस सन्धि के द्वारा भूगर्भीय–परीक्षणों को छोड़कर बाह्म आकाश, समुद्र तथा परमाणु परीक्षण करने पर पाबन्दी लगा दी गई। इसकी प्रमुख धाराएं निम्नलिखित थे–

    (क) प्रथम धारा में तीनों देशों द्वारा यह निश्चय किया गया कि वे अपने क्षेत्राधिकार में वायुमण्डल आकाश तथा समुद्र में किसी तरह का आणविक विस्फोट नहीं करेंगे।

    (ख) इसकी दूसरी धारा में संशोधन की व्यवस्था की गई।

    (ग) तीसरी धारा में तीनों देशों की सहमति पर नए देश के इसमें शामिल होने का प्रावधान किया गया।

    (घ) इसकी चौथी धारा में सन्धि से अलग होने का प्रावधान था।

    (ड.) इसकी अन्तिम धारा में सन्धि के अंग्रेजी तथा रूसी भाषा के दोनों रूपों को समान मान्यता दी गई।

इस सन्धि का प्रमुख दोष यह था कि भूगर्भ–परीक्षणों पर यह सन्धि चुप थी। फिर भी धीरे–धीरे 108 देशों ने इस सन्धि को स्वीकार कर लिया और यह एक व्यापक कार्यक्रम बन गई। इसे निःशस्त्रीकरण की एक अच्छी शुरूआत व युगान्तरकारी घटना कहा जा सकता है। क्योंकि इस सन्धि ने निःशस्त्रीकरण के प्रयासों में तेजी ला दी और सभी देश निःशस्त्रीकरण का महत्व समझने लग गए।

13. **निःशस्त्रीकरण आयोग सम्मेलन** – 1963 की समिति परमाणु प्रतिबंध सन्धि ने निःशस्त्रीकरण कार्यक्रम को बढ़ावा देने के लिए 21 जनवरी, 1964 में जेनेवा में निःशस्त्रीकरण आयोग की बैठक हुई। इसमें कहा गया कि सामरिक महत्व के शस्त्रास्त्रों के विकास को रोका जाए, उनका उत्पादन बन्द किया जाए यूरोप तथा

अन्य देशों में अणु–रहित क्षेत्रों का विकास किया जाए, अनाक्रमण समझौते हों, बमवर्षक विमान नष्ट किए जाएं तथा भूमिगत परमाणु परीक्षण भी रोके जाए। लेकिन महाशक्तियों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा की भावना के चलते इन प्रस्तावों को भी अस्वीकार कर दिया गया।

14. **बाह्य आकाशी सन्धि–** 1966 में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा शान्तिपूर्ण कार्यो के लिए बाहरी अन्तरिक्ष प्रयोग सम्बन्धी एक प्रस्ताव पास किया। इस प्रस्ताव के अनुसार सोवियत संघ, ब्रिटेन तथा अमेरिका ने बाहरी आकाश में परमाणु शस्त्रों को भेजना निषिद्ध मान लिया। इस सन्धि की प्रमुख बातें निम्नलिखित थीं–

(क) अन्तरिक्ष अन्वेषण का प्रयोग शान्तिपूर्ण कार्यो के लिए किया जाएगा।

(ख) अन्तरिक्ष की गतिविधियों में समन्वय स्थापित करने तथा सूचनाओं का आदान–प्रदान करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ को केन्द्र बनाया जाए।

(ग) अन्तरिक्ष कार्यक्रम द्वारा अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ाया जाए।

इस सन्धि को दोनों महाशक्तियों ने मान लिया और आकाश में परीक्षण करने की योजना को नकारने वाली बात स्वीकार कर ली।

15. **परमाणु अप्रसार–सन्धि–** सोवियत संघ तथा अमेरिका के बीच 1968 में यह सन्धि हुई। इस सन्धि का उद्देश्य विश्व को बढ़ते परमाणु शस्त्रों के खतरे से बचाना था। इसलिए 24 अप्रैल, 1968 को महासभा का एक विशेष अधिवेशन इस सन्धि पर विचार करने के लिए बुलाया गया। पहली बार दोनों महाशक्तियों ने इस सन्धि को सर्वसहमति से स्वीकार किया। परमाणु अस्त्र–अप्रसार सन्धि (Nucelar Non-Proliferation Treaty) की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित थीं–

(क) परमाणु शक्ति सम्पन्न देश गैर परमाणु शक्ति वाले देशों को परमाणु शस्त्र बनाने वाली परमाणु तकनीकी का रहस्य नहीं देंगे।

(ख) परमाणु शक्ति का शान्तिपूर्ण कार्यो के लिए प्रयोग किए जाने वाली तकनीक का ज्ञान हस्तांतरिक किया जा सकता है।

(ग) परमाणु शक्ति से हीन राष्ट्रों को अपने परमाणु संस्थानों के निरीक्षण का अधिकार अंतर्राष्ट्रीय शांति आयोग को देना स्वीकार किया।

(घ) सम्भावित परमाणु शक्ति वाले देश परमाणु ऊर्जा का प्रयोग अपने आर्थिक विकास तथा अन्य असैनिक कार्यो के लिए कर सकते हैं।

अमेरिका तथा सोवियत संघ द्वारा संधि पर हस्ताक्षर करने के बाद अनेक देशों ने हस्ताक्षर कर दिए। लेकिन भारत, अर्जेन्टाइना तथा ब्राजील ने इस सन्धि पर हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया क्योंकि इन देशों ने इस संधि को पक्षपातपूर्ण माना। यह सन्धि निःशस्त्रीकरण का कोई सर्वमान्य वास्तविक हल नहीं थी। इस सन्धि में न तो नए परमाणु अस्त्रों के निर्माण पर रोक लगाई गई थी और न ही परमाणु शक्ति सम्पन्न देशों के परमाणु अनुसंधान कार्यक्रम पर किसी प्रकार के नियंत्रण की व्यवस्था थी। यह संधि परमाणु शक्ति सम्पन्न देशों के हितों की पोषक थी। इसका अन्तिम लक्ष्य गैर परमाणु शक्ति सम्पन्न देशों को परमाणु शक्ति बनने से रोकना था। फ्रांस व चीन ने भी इस सन्धि को अपने राष्ट्रीय हितों के खिलाफ मानते हुए हस्ताक्षर करने से मना कर दिया। इसी तरह कुछ अन्य देशों ने भी इसके पक्षपातपूर्ण स्वरूप के कारण अमान्य कर दिया। इस प्रकार अनेक देशों ने इसे अमेरिका और सोवियत संघ द्वारा 'परमाणु अस्त्रों पर एकाधिकार' की भावना का पोषक कहा। अतः निशस्त्रीकरण का यह प्रयास भी पूर्ण रूप से निःशस्त्रीकरण का कोई सर्वमान्य उपाय प्रस्तुत नहीं कर सका।

16. **समुद्री तल सन्धि–** 7 दिसम्बर, 1970 को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा यह प्रस्ताव पास किया गया कि महासमुद्रों को परमाणु शस्त्रों से मुक्त रखा गया। इस प्रस्ताव को असली जामा पहनाने के लिए 11 फरवरी, 1971 को अमेरिका, सोवियत संघ व ब्रिटेन ने क्रमशः वॉशिंगटन, मास्को तथा लन्दन में हस्ताक्षर किए। इस सन्धि द्वारा यह प्रावधान किया गया कि किसी भी राष्ट्र के समुद्र तट से 19 किलोमीटर तक के क्षेत्रीय जल को छोड़कर महासागरों के किसी भी अन्य हिस्से में परमाणु शस्त्र व उनके वाहक प्रक्षेपास्त्र तैनात न किए जाएं। किन्तु इसमें परमाणु शस्त्रों से लदी हुई पनडुब्बियों व युद्धपोतों को मुक्त रखा गया। इस सन्धि के अनुसार सन्धिकर्ता देशों ने समुद्री तल, महासागरीय तल तथा उपधरती पर किसी भी तरह के जनसंहारक शस्त्रो व परमाणु शस्त्रों के विस्तार पर रोक लगाने की बात स्वीकार की। और यह सन्धि 18 मई, 1972 को लागू हो गई। लेकिन परमाणु शस्त्रों से लैस पनडुब्बियों व युद्धपोतों को इस सन्धि की व्यवस्थाओं से मुक्त रखने के कारण यह महत्वहीन हो गई।

17. जैविक शस्त्र समझौता – 10 अप्रैल, 1972 को अमेरिका, ब्रिटेन तथा सोवियत संघ ने जीवाणु शस्त्रों के उत्पादन, संग्रह तथा उनके प्रयोग पर रोक लगाने के लिए आपस में समझौता किया। इस समझौते के अनुसार यह निर्णय लिया गया कि वे ऐसे अस्त्रों का न तो निर्माण करेंगे और न ही प्राप्त करने का प्रयास करेंगे। यह समझौता 26 मार्च, 1975 को लागू हो गया। इस समझौते के अनुसार नशीले पदार्थो, शस्त्रों, उपकरणों तथा वाहकों को नष्ट करने या उन्हें शांतिपूर्ण उद्देश्य की तरफ मोड़ने का निर्णय लिया गया।

18. **सामरिक अस्त परिसीमतन समझौते** (**SALT-I,II**) अमेरिका और सोवियत संघ के बीच 3 जुलाई, 1974 को प्रथम दस वर्षीय आणविक आयुद्य परिसीमन समझौता हुआ और इसे 31 मार्च, 1976 को लागू करने की बात पर सहमति हुई। इसके अनुसार 150 किलो टन से अधिक के भूमिगत आणविक परिक्षणों को रोकने तथा प्रक्षेपास्त्रों पर नई सीमा लगाने का निर्णय हुआ। शान्तिपूर्ण कार्यो के लिए किए गए विस्फोटों को इसकी परिधि से बाहर रखा गया। इसका उद्देश्य परमाणु युद्ध की सम्भावना को कम करना था। इसके बाद 1979 में सोवियत संघ तथा अमेरिका ने दूसरा साल्ट समझौता किया। इस समझौते का दोनों देशों की संसद द्वारा अनुमोदन होना था। लेकिन अफगानिस्तान संकट ने इसे हानि पहुंचाई और इसका अनुमोदन स्थगित हो गया। यह समझौता 28 नवम्बर 1980 को साल्ट पर नवीन वार्ता शुरू होने पर नए सिरे से लागू होने के कगार पर पहुंच गया। इस समझौते के अनुसार दोनों देशों ने अपने सामरिक शस्त्रों को 5 वर्षो तक सीमित करने पर विचार किया ताकि निःशस्त्रीकरण को प्रभावी बनाया जा सके।

19. **ब्रेजनेव योजना**– फरवरी, 1981 में सोवियत नेता ब्रह्मनेव ने अपनी 8 सूत्रीय योजना प्रस्तुत की। उसने कहा कि सोवियत संघ अमेरिका के साथ सार्थक शस्त्र नियंत्रण वार्ताओं का इच्छुक है। उसने नवीन पनडुब्बियों के विस्तार तथा आधुनिक प्रक्षेपास्त्रों के विकास को रोकने पर अपनी सहमति दर्शाई। इस योजना का सर्वत्र स्वागत किया गया। लेकिन अमेरिका ने कोई उत्साहवर्धन प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। इसलिए यह योजना प्रभावी कार्यक्रम नहीं बन सकी।

20. **चार–सूत्री रीगन प्रस्ताव–** अमेरिका ने ब्रेह्मनेव योजना के प्रत्युत्तर में अपना चार–सूत्री कार्यक्रम (फरवरी, 1981 में) प्रस्तुत किया। इसमें अमेरिका ने कहा कि सोवियत संघ अपने एस.एस. 5 व एस.एसए 20 प्रक्षेपास्त्र नष्ट कर दे तथा अमेरिका पर्शिग 2 तथा समकक्ष थल आधारित प्रक्षेपास्त्र तैनात न करे, सामरिक शस्त्रों में भारी कटौती करने के लिए वार्ताए करने लिए तैयार हो जाए। लेकिन सोवियत संघ ने इसे प्रचारकारी हथकंडा बताकर अस्वीकार कर दिया।

21. **रीगम निःशस्त्रीकरण प्रस्ताव** – मई, 1982 में अमेरिकी राष्ट्रपति रीगन ने अंतरर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्रों को सीमित करने के लिए सोवियत संघ को कुछ सुझाव दिए। रीगन प्रस्तावों में कहा गया कि दोनों देशों को

परस्तर परमाणु प्रक्षेपास्त्र कम करने चाहिए और साथ ही भूमि तक मार करने वाले प्रक्षेपास्त्रों में कमी की जानी चाहिए। इसमें परस्पर 1/3 कटौती का प्रस्ताव पेश किया गया। लेकिन सोवियत संघ इसका सकारात्मक उत्तर न दिए जाने के कारण यह प्रस्ताव भी निरस्त हो गया।

22. **जेनेवा वार्ता का नया दौर** – 1983 में जेनेवा में अमेरिका और सोवियत संघ के बीच START वार्ता के असफल रहने पर 1985 में फिर से नए सिरे से वार्ता करने पर सहमति हुई। दोनों देश फिर से शस्त्र दौड़ रोकने पर सहमत हो गए। सोवियत संघ अमेरिका ने स्पष्ट कहा कि वह न तो अपने स्टारवार कार्यक्रम को समाप्त करेगा और न उसमें ढील देगा। इस तरफ परस्पर आरोपों–प्रत्यारोपों के बीच यह वार्ता 23 अप्रैल, 1985 को स्थगित हो गई।

23. **निःशस्त्रीकरण सम्मेलन नई दिल्ली** – 1985 में 6 देशों अर्जेन्टाइना, ग्रीस, स्वीडन, मास्को, तनजानिया तथा भारत का सम्मेलन नई दिल्ली में आयोजित हुआ। इसमें परमाणु अस्त्र बनाने वाले देशों से आग्रह किया गया कि वे सभी परमाणु परीक्षणों पर रोक लगाएं और परमाणु शस्त्र दौड़ को समाप्त करें। इस प्रकार निःशस्त्रीकरण की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण प्रयास था।

24. **रीगन–गोर्बाच्योव शिखर वार्ता** – नवम्बर 1985 में जेनेवा में अमेरिका के राष्ट्रपति रीगन तथा सोवियत राष्ट्रपति गोर्बाच्योव ने विश्व शांति बनाए रखने के लिए अंतरिक्ष में शस्त्र–दौड़ पर नियंत्रण करने तथा धरती पर इसे समाप्त करने के लक्ष्य पर जोर दिया। लेकिन यह वार्ता बिना किसी ठोस परिमणाम के समाप्त हो गई।

25. **मध्यम दूरी प्रक्षेपास्त्र संधि** – 8 दिसम्बर, 1987 को अमेरिका तथा सोवियत संघ द्वारा इस ऐतिहासिक सन्धि पर हस्ताक्षर किए गए। INF सन्धि के नाम से प्रसिद्ध इस सन्धि में यह व्यवस्था की गई कि दोनों पक्ष 500 से 5000 किमी. तक मार करने वाले प्रक्षेपास्त्रों को तैनाती स्थानों से हटा लेंगे या नष्ट कर देंगे। इसमें अमेरिका द्वारा एक परमाणु बम युक्त 364 प्रक्षेपास्त्र तथा सोवियत संघ द्वारा 3–3 परमाणु बमों से युक्त 500 प्रक्षेपास्त्र हटाने पर सहमति हुई। इस सन्धि के अनुसार सोवियत संघ के एस.एस.12 तथा एस.एस.22 एंव अमेरिका के पर्शिग 2 प्रक्षेपास्त्र महासागरों पर दागकर नष्ट करने का निर्णय हुआ। इस सन्धि के अनुसार दोनों पक्ष परमाणु परीक्षणों की क्षमता की जांच के लिए परस्पर निरीक्षण की सुविध देने पर सहमत हो गए। इस सन्धि का सभी देशों ने स्वागत किया और निर्धारित अवधि में दोनों ने अपने प्रक्षेपास्त्रों को नष्ट भी कर दिया। इस प्रकार यह सन्धि निःशस्त्रीकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक कदम था। इससे तीसरे विश्व युद्ध की सम्भावना कम हो गई।

26. **गोर्बाच्योव की घोषणा**– 7 दिसम्बर, 1988 को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में सोवियत राष्ट्रपति गोर्बाच्योव ने अपनी सेनाओं में कटौती तथा पूर्वी यूरोप में अपने परमपरागत शस्त्रों में कटौती की एक पक्षीय घोषणा की। यह सोवियत संघ की तरफ से निःशस्त्रीकरण के लिए उठाया गया एक महत्वपूर्ण कदम था।

इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना से लेकन शीत युद्ध की समाप्ति तक निःशस्त्रीकरण के अनेक प्रयास किए गए। इनमें से कुछ प्रयास सफल भी रहे। लेकिन कोई ऐसा प्रभावी कार्यक्रम तैयार नहीं हो सका जो तीसरे विश्व युद्ध की सम्भावना को पूर्णतयाः नष्ट कर सके। 1989 के अन्त में सोवियत संघ के विघटन ने अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को नए सिरे से स्थापित करने के विचार को प्रबल बना दिया। इस समय अनेक परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र जन्म ले चुके थे। अमेरिका को सोवियत संघ की चुनौती से अब अधिक सावधान रहने की आवश्यकता नहीं रही। अब चीन व भारत परमाणु शक्ति सम्पन्न एशियाई देशों के रूप में उभरने लगे। नई चुनौती का सामना करने के लिए अमेरिका ने सोवियत संघ के साथ अपना निःशस्त्रीकरण कार्यक्रम जारी रखना आवश्यक समझा और शीत युद्ध के बाद भी निःशस्त्रीकरण कार्यक्रम की बागडोर अमेरिका के ही हाथ में रही।

15.5.4 शीतयुद्ध के अंत से वर्तमान समय तक

शीत युद्ध के बाद निःशस्त्रीकरण की दिशा में किए गए प्रयास निम्नलिखित थे–

1. **वॉशिंगटन शिखर–सम्मेलन–** सोवियत राष्ट्रपति गोर्बाच्योव तथा अमेरिका के राष्ट्रपति जॉर्ज बुश के बीच शीत युद्ध के अन्त के बाद यह पहला सम्मेलन जून 1990 में वॉशिंगटन में हुआ। इसमें रसायनिक शस्त्रों सहित शस्त्र नियंत्रण पर एक महत्वपूर्ण समझौता हुआ। दोनों देशों ने अपने–अपने शस्त्र भंडारों में से 5000 टन कम करने तथा हजारों टन विध्वंसक सामग्री नष्ट करने पर सहमति जताई। इसकी अवधि 1992 से 2000 तक रखी गई। इसमें रासायनिक शस्त्रों पर तुरन्त रोक लगा दी गई। इस सम्मेलन में 'सामरिक शस्त्र कटौती सन्धि' START को संचालित करने वाले कुछ नियमों पर भी समझौता हुआ। इस प्रकार शीत युद्ध के बाद यह सम्मेलन निःशस्त्रीकरण का प्रथम महत्वपूर्ण प्रयास था।

2. **पेरिस वार्ता –**19 नवम्बर, 1990 को वारसा तथा नाटो के देशों ने परम्परागत शस्त्रों में कटौती करने के उद्देश्य से पेरित में एक सम्मेलन बुलाया। इसमें टेंकों, तोपों, सैनिक सशस्त्र वाहनों को नष्ट करने का निर्णय लिया गया। इसमें टैंकों की 20,000 सैनिक सशस्त्र वाहन 30,000 लड़ाकू हवाई जहाज 6800 तथा हैलीकॉप्टर 2000 की संख्या तक निश्चित की गई। इस वार्ता ने एक ऐसा वातारण तैयार किया कि निःशस्त्रीकरण के प्रयास पहले की तुलना में अब अधिक सफल दिखाई देने लगे।

3. **सामरिक शस्त्रों में कटौती की ऐतिहासिक सन्धि (START-I)–** सामरिक शस्त्रों पर कटौती की प्रक्रिया जो SALT-II के दौरान निष्क्रिय हो गई थी। अब START-I के माध्यम से पुनर्जीवित हो उठी। इस सन्धि द्वारा सोवियत संघ तथा अमेरिका ने अपने–अपने परमाणु शस्त्रो में से 30 प्रतिशत कटौती करने पर सहमति प्रकट की। सोवियत संघ ने 11000 से 7000 तथा अमेरिका ने 12000 से 9000 तक शस्त्र कटौती करना स्वीकर किया। यह पहला औपचारिक प्रयास था जिसके अंतर्गत दोनों महाशक्तियों ने स्वेच्छा से घातक हथियारों में कटौती करना स्वीकार किया।

4. **जॉर्ज बुश की निःशस्त्रीकरण घोषणा–** 28 सितम्बर, 1991 को अमेरिका के राष्ट्रपति जॉर्ज बुश ने एक पक्षीय निशस्त्रीकरण की घोषणा की। उसने अपनी इस योजना में कहा।

   (क) जहाजों और पनडुब्बियों से छोड़ी जाने वाली सभी समुद्री परमाणु मिसाइलें समाप्त हों।

   (ख) कम दूरी तक मारक क्षमता रखने वाले सभी सामरिक परमाणु शस्त्रों को नष्ट करना।

   (ग) बी–52 तथा अन्य बम वर्षकों को निष्क्रिय करना।

   (घ) स्टार्ट सन्धि को क्रियान्वित करना।

   इस प्रकार अमेरिका ने अपने एकपक्षीय निःशस्त्रीकरण के इस कदम द्वारा सम्पूर्ण विश्व को आशावान बना दिया कि अब तीसरे विश्व युद्ध का कोई खतरा नहीं है। उसने अपने परमाणु हथियारों को नष्ट करने की एक तरफा घोषणा करके सम्पूर्ण विश्व को चौंका दिया। उसके इस कदम ने सोवियत संघ को भी शस्त्र कटौती के लिए प्रेरित किया।

5. **गोर्बाच्योव की घोषणा** – अमेरिका के द्वारा शस्त्र कटौती के सकारात्मक प्रयास का सोवियत संघ ने भी सकारात्मक उत्तर दिया। उसने अपनी सभी परमाणु मिसाइलों को जल्दी हटाने की घोषणा की। उसने अपनी सशस्त्र सेनाओं में 200000 तक कटौती करने तथा 2000 परमाणु अस्त्रों को कम करने की घोषणा की। उसने कहा कि – (I) जंगी जहाजों और बहुउद्देश्यीय पनडुब्बियों से सभी सामरिक शस्त्रों को दूर कर

लिया जाएगा। (II) परमाणु शस्त्रों का भंडारण कम किया जाएगा (III) सामरिक महत्व के खतरनाक शस्त्रों में भी कटौती की जाएगी। इस प्रकार सोवियत संघ की इस घोषणा को सभी देशों ने सराहा। इसलिए यह घोषणा स्वैच्छिक निःशस्त्रीकरण का एक महत्वपूर्ण प्रयास थी।

6. **स्टार्ट–II संधि** – 3 जनवरी, 1993 को अमेरिका और सोवियत संघ के बीच निःशस्त्रीकरण के लिए स्टार्ट–II सन्धि पर हस्ताक्षर किए। यह 1991 की START-I सन्धि के विकास का अगला प्रयास थी। इस सन्धि के द्वारा दोनों देश अपने शस्त्रों में व्यापक कटौती करने पर सहमत हो गए। 2/3 कटौती के तहत दोनों देश अपने परमाणु शस्त्रों को 6500 तक रखने पर सहमत हो गए। इसमें समुद्र तक के नीचे वाली विध्वंसक मिसाइलों की संख्या 1700 से 1750 तक के लाने पर सहमति हुई। बमवर्षक जहाजों द्वारा ले जाने वाले परमाणु शस्त्रों की संख्या 750 से 1250 तक, भारी ICMBS पर शस्त्रों की संख्या 656 तक करने पर समझौता हुआ। इस तरह START-II सन्धि INF तथा START-1 से भी अधिक व्यापक थी। इससे निःशस्त्रीकरण के प्रयासों को काफी लाभ हुआ

7. **रासायनिक हथियार निषेध सन्धि** – 13 अप्रैल, 1993 को 160 देशों ने पेरिस में इस ऐतिहासिक सन्धि पर हस्ताक्षर किए और यह 29 अप्रैल, 1997 से लागू हो गई। इस सन्धि के प्रारूप में रासायनिक शस्त्रों की खोज, विकास, भण्डारण व हस्तांतरण पर पूर्ण रोक की व्यवस्था की गई है। इस संधि पर हस्ताक्षर करने वाले देशों ने, 15 वर्ष तक अपने रासायनिक हथियारों को नष्ट करने की बात पर सहमति जताई है। रासायनिक शस्त्रों को नष्ट करने की दिशा में अमेरिका तथा रूस के सहयोग के बिना यह सन्धि अधिक प्रभावी नहीं हुई हैं। आज भी चोरी–छिपे अनेक देश रासायनिक हथियारों का निर्माण कर रहे हैं।

8. **अमेरिका तथा उत्तरी कोरिया के बीच परमाणु समझौता** – 21 अक्तूबर 1994 को अमेरिका और उत्तर कोरिया ने आपस में एक परमाणु समझौता किया। इस समझौते के अनुसार उत्तरी कोरिया अपने वर्तमान परमाणु कार्यक्रम को स्थगित करने तथा अपने परमाणु संस्थानों की जांच कराने पर सहमत हो गया। इस समझौते ने विश्व शांति के विचार को मजबूत आधार प्रदान किया। इससे निःशस्त्रीकरण कार्यक्रम की प्रक्रिया में तेजी आई।

9. **व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि (Comprehensive Test Ban Treaty)–** CTBT के नाम से प्रसिद्ध यह ऐतिहासिक सन्धि 11 सितम्बर, 1998 को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा भारी बहुमत से पारित कर दी गई। इस संधि के तहत परमाणु परीक्षणों पर रोक लगाई गई है। भेदभावपूर्ण होने के कारण भारत ने CTBT पर हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया और इसके प्रारूप में कुछ संशोधन करने की अपनी मांग दोहराई। पाकिस्तान ने भी कहा कि जब तक भारत इसे स्वीकार नहीं करेगा, वह भी CTBT पर हस्ताक्षर नहीं करेगा। वीटो पावर प्राप्त पांचों देशों ने इस पर हस्ताक्षर कर दिए और अन्य देशों पर भी इस पर हस्ताक्षर करने के लिए दबाव बढ़ाना शुरू कर दिया। भारत का इससे चिन्तित होना स्वाभाविक था क्योंकि यह सन्धि परमाणु शक्ति सम्पन्न देशों के परमाणु संवर्धन पर कोई रोक नहीं लगाती। यदि इस सन्धि को सर्वसहमति का आधार प्राप्त हो जाएगा तो विकसित परमाणु शक्ति सम्पन्न देश विकासशील देशों पर अपना परमाणु साम्राज्यवाद थोपने में सक्षम हो सकते हैं। इसकी समीक्षा करने के लिए वियना सम्मेलन (1999) में भारत ने भाग नहीं लिया। इस समय तक 154 देशों ने इस पर हस्ताक्षर कर दिए थे और 45 ने इसकी पुष्टि कर दी थी। लेकिन अभी भी कुछ परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों द्वारा इसकी पुष्टि होना शेष हैं। भारत की चिन्ता स्वाभाविक है। यदि इसको मान लिया जाए तो परमाणु विहीन देश परमाणु शस्त्र नहीं बना सकेंगे और न ही परमाणु तकनीक का शान्तिपूर्ण कार्यो के लिए प्रयोग कर सकेंगे। इसलिए पक्षपातपूर्ण होने के कारण विकासशील परमाणु शक्ति सम्पन्न देश भी इस सन्धि पर हस्ताक्षर करने में आनाकानी कर रहे है।

इसलिए इसकी विश्वसनीयता व प्रभावशीलता पर प्रश्नचिन्ह लग गया है।

10. **परमाणु कचरा सन्धि–** 1997 में परमाणु कचरे के बारे में कुछ नियमों का निर्णारण करने के लिए इस संधि पर हस्ताक्षर किए गए। भारत ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया लेकिन दक्षिण अफ्रीका, पाकिस्तान तथा न्यूजीलैंड ने इसका विरोध किया। इस सन्धि के अनुसार जिस देश में परमाणु विस्फोट होगा, वही देश परमाणु कचरे का निपटान करेगा।

11. **परमाणु निःशस्त्रीकरण प्रस्ताव –** संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 8 दिसम्बर, 1998 को परमाणु निःशस्त्रीकरण प्रस्ताव पास किया। इसमें परमाणु शक्ति सम्पन्न देशों से अणु–युद्ध की सम्भावनाओं को कम करने के लिए आवश्यक कदम उठाने का आग्रह किया गया। इसमें परमाणु अप्रसार को बढ़ावा देने पर बल दिया गया। इसमें परमाणु परीक्षण न करने तथा परमाणु तकनीकी के विकास पर रोक लगाने की बात भी कही गई। इस प्रस्ताव में मौजूदा परमाणु शस्त्रों के भण्डारों पर चिन्ता व्यक्त की गई।

12. मई 2000 में सम्पन्न हुए परमाणु अप्रसार सन्धि समीक्षा सम्मेलन में भी पांच परमाणु शक्ति सम्पन्न वीटो पावर वाले देशों ने परमाणु शस्त्रों में कटौती की घोषणा की। इससे निःशस्त्रीकरण के प्रयासों को अधिक बल मिला है।

13. मई, 2002 में अमेरिक और रूस के बीच हुई परमाणु शस्त्र कटौती संधि भी निःशस्त्रीकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास है। इस सन्धि के अनुसार 2012 तक परमाणु शस्त्रों में कटौती का लक्ष्य पूरा किया जाना है।

15.6 सारांश

इस प्रकार राष्ट्रसंघ तथा संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा निःशस्त्रीकरण को बढ़ावा देने वाले बराबर प्रयास किए जाते रहे हैं। शीतयुद्ध में शिथिलता के दौरान तो निःशस्त्रीकरण के प्रयास अधिक प्रभावी रहे हैं। लेकिन आज भी विश्व के अनेक देशों में अन्धाधुन्ध शस्त्र प्रतिस्पर्धा का दौर जारी है। आज परमाणु शस्त्रों के युग में प्रत्येक राष्ट्र अपने को असुरक्षित महसूस करता है और आर्थिक साधनों के अभावों के बावजूद भी परमाणु शक्ति सम्पन्न देशों की पंक्ति में शामिल होना चाहता है। आज परस्पर असुरक्षा के वातावरण में प्रत्येक राष्ट्र शास्त्र–दौड़ में आगे रहना चाहता है। दो विश्वयुद्धों ने शस्त्र दौड़ को अत्यधिक बढ़ाया है। तीसरे विश्वयुद्ध की सम्भावना ने इसमें अप्रत्याशित वृद्धि की है। विकासशील देश पारस्परिक मतभेदों का शिकार होने के कारण क्षेत्रीय शान्ति को सबसे बड़ी चुनौती दे रहे हैं। आज आतंक का संतुलन है कोई भी अपने को सुरक्षित नहीं मानता है। प्रत्येक राष्ट्र शस्त्रों की घातक मारक क्षमता से अच्छी तरह परिचित है, फिर भी वह शस्त्रदौड़ में पीछे नहीं हटना चाहता। विश्व जनमत के निःशस्त्रीकरण के पक्ष में होने के बावजूद भी शस्त्र–प्रतिस्पर्धा शस्त्र नियंत्रण या निःशस्त्रीकरण पर हावी है। परमाणु युद्ध का भय अनियन्त्रित शस्त्र दौड़ को बढ़ावा दे रहा है। आज विश्व के विकसित व परमाणु शक्ति सम्पन्न देशों को निःशस्त्रीकरण कार्यक्रम में अपनी सकारात्मक व पक्षपात विहीन भूमिका निभाने की आवश्यकता है ताकि भय मुक्त विश्व समाज की स्थापना की जा सके और आंतक के संयुक्त के स्थान पर शांति का वातावरण हो।

15.7 प्रश्नावली

1. शस्त्र नियंत्रण व निःशस्त्रीकरण से आपका क्या अभिप्राय है? निःशस्त्रीकरण के विभिन्न प्रकारों की विवेचना कीजिए।
2. वर्तमान युग में निःशस्त्रीकरण की आवश्यकता का वर्णन कीजिए।
3. निःशस्त्रीकरण हेतु शीतयुद्ध काल में किए गए प्रयासों का आलोचनात्मक वर्णन करें।

4. शीतयुद्धोत्तर युग में निःशस्त्रीकरण हेतु किए गए प्रयासों का वर्णन कीजिए।
5. द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से आजतक परम्परागत हथियारों की होड को रोकने के प्रयासों की चर्चा करें।
6. सन् 1945 से 1998 तक परमाणु हथियारों के प्रयास को क्या करने वाले समझौतों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करें।
7. समसामयिक समय में हथियारों की होड़ में कमी आने वाली प्रवृतियों का आंकलन कीजिए।

15.8 पाठन सामग्री,

1. महेन्द्र कुमार, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सैद्धान्तिक पक्ष (आगरा, 1984)
2. हेंस जे. मारगेन्थाऊ, पॉलिटिक्स अमंग नेशंज (कलकत्ता, 1972)
3. पीटर कलवोसिरेसी, वर्ल्ड पॉलिटिक्स सिंस, 1945 (लन्दन, 1987)
4. नार्मन डी. पामर एवं होवर्ड डी पकिंज, इन्टरनेशनल रिलेसन्ज, (कलकत्ता, 1970)
5. जॉन बेलिस एवं स्टीव स्मीथ, सम्पा०, ग्लोबलाईजेसन ऑफ वर्ल्ड पॉलिटिक्स (न्ययार्क, 2002)
6. अनीकचटर्जी, इन्टरनेशनल रिलेसंज टूडे (दिल्ली, 2010)
7. रूमकी बासु, सम्पा०, इन्टरनेशनल पॉलिटिक्स : कन्सेपटस, थ्यौरिज एण्ड इश्यूज, (सेज, 2012)
8. क्रिस्टीयन रूसेमित एवं डंकन एनीडल, सम्पा०, दॉ ऑक्सफोर्ड हेंडबुक ऑफ इन्टरनेशनल रिलेसंज, (ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रैस, 2010)